वर्ष-6, अंक : 12 जुलाई-दिसंबर, 2018

जेएनयू परिसर

इस अंक के कुछ महत्त्वपूर्ण लेखक :

जितेन्द्र श्रीवास्तव, देवशंकर नवीन, गंगा सहाय मीणा, प्रमोद पाण्डेय, अजय कुमार शास्त्री, व्यालोक, दीप्ती शर्मा, कल्पना वर्मा, संदीप मील, प्रियंका कुमारी, नवीन सिंह, अविनाश कुमार, संगीता कुमारी, ओमप्रकाश सैन, प्रशांत कुमार पाण्डेय, सुमित चौधरी आदि

हमारे भव्य जंगलात उन वन्य जीवों एवं खूबसूरत परिंदों को उद्धृत करते हैं जो हमारे जीवन को उज्जवल बनाते हैं। यदि वे भव्य वन्य जीवन हमें खेलने व देखने को ना मिले तो हमारा जीवन नीरस व रंगहीन हो जाएगा। अतः हमें बचे हुए वन्यजीवों एवं जंगलों का संरक्षण करना चाहिए।

- पं. जवाहरलाल नेहरू

सूखे पेड़

मैक्सिकन सिल्क कॉटन ट्री

राजधानी दिल्ली को यदि पर्यावरण की दृष्टि से अवलोकित किया जाए तो यहां पर मुख्य रुप से दो प्रकार के इकोसिस्टम्स हैं। पहला 'यमुना नदी' व दूसरा 'अरावली पर्वत शृंखला' ये दोनो ही इस महाभारत कालीन 'खांडवप्रस्थ' की जीवन रेखा हैं। जेएनयू परिसर भी 'अरावली पर्वत शृंखला' की गोद में बसा हुआ 'दक्षिणी-दिल्ली का रिज फोरेस्ट' है जहां की प्राकृतिक छटा आज भी लुभावनी है। नृत्य करते हुए मयूर, गाते हुए कोयल व पपीहे, कुलांचे भरते नीलगायों के छौने व खरहे, साही एवं सियार आदि आज भी आसानी से नज़र आ जाते हैं।

सन् 1973 में जब परिसर जेएनयू को आबंटित हुआ था उस वक्त ये एक बंजर इलाका था। मगर सामुदायिक प्रयासों व प्रशासन की दूरदर्शिता के नतीजतन ये आज हमें हरा-भरा व खुशहाल नज़र आता है। परन्तु क्या हमनें कभी यह भी सोचा है कि हम सभी-लोग प्रकृति के इस नायाब परिसर को कितना नुकसान पहुंचा रहे हैं? जबकि, आज भी प्रशासन इस परिसर की खूबसूरती को संरक्षित करने में प्रयत्नशील है, उदाहरण के तौर पर 'डस्टबिन' की स्थापनाएं, 'पॉलीथीन' पर 100% रोक, परिसर में बैट्री रिक्शा का संचालन जो कि वायु-प्रदूषण को कम करने में प्रशासन की एक सराहनीय पहल है और शायद इसीलिये प्रसिद्ध पर्यावरणविद् 'इकबाल मलिक' ने जेएनयू परिसर को 'जीरो-प्रदूषण जोन' का दर्जा दिया है। ऐसे में क्या हम सबका यह दायित्व नहीं बनता कि हम जेएनयू परिसर को साफ-सुथरा व प्रदूषण मुक्त रखें व प्रधानमंत्री जी के आह्वान 'स्वच्छ-भारत' के सपने को पूरा करने में अपना योगदान दें।

जेएनयू ने 80 के दशक के दौरान परिसर में अंडर ग्राउंड वाटर टेबल को ऊपर उठाने के लिये तीन चैक-डैम बनवाए थे जिन्होंने कई वर्षों तक हमारा साथ दिया, मगर आज वो भी दम तोडते नज़र आ रहे हैं। दो सूख भी गए हैं। दरार पड़ने का कारण व आखिरी वाले को परिसर वासियों ने कूड़े व अन्य अवांछनीय सामग्री से भर दिया है जिसके कारण जीव जन्तुओं को प्रदूषित पानी पीने में भी बाधा आ रही है। जहां एक ओर प्रशासन 'रेन वाटर हार्वेस्ट' कर रहा है, वहीं एक समुदाय पानी को व्यर्थ गवां रहा है या प्रदूषित कर रहा है।

आवारा कुत्तों की बढ़ती तादाद भी चिंता का विषय है क्योंकि इससे परिसर की संपूर्ण खाद्य शृंखला चरमरा-सी गई है जहां एक समय 'सियार' परिसर का सर्वोच्च भक्षक होता था वहीं आज आवारा कुत्ता आ खड़ा हुआ है। ये ना केवल नीलगायों, खरहों, सियारों, मोरों आदि को मार कर खा रहे हैं, वरन् परिसर के बाशिंदों को भी काट रहें हैं जो कभी-कभी जानलेवा भी हो सकता है। इस लेख के माध्यम से मैं सभी परिसर-वासियों से अपील करना चाहूंगा कि इस स्वतंत्रता दिवस पर हम ये संकल्प लें कि हम सभी परिसर में फैलती हुई गंदगी से 'स्वतंत्रता' दिलवाएंगे।

- डॉ. सूर्य प्रकाश

पश्चिमाबाद चैक डैम

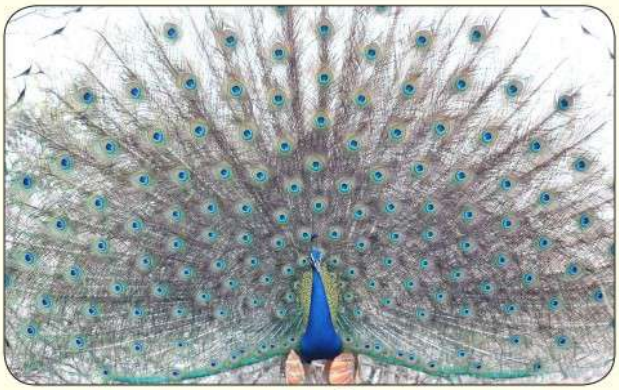

मोर

जेएनयू परिसर

वर्षः 6, अंकः 12, जुलाई-दिसम्बर 2018

संरक्षक

डॉ. प्रमोद कुमार
कुलसचिव

संपादक-मंडल

प्रो. सुधीर प्रताप सिंह
प्रो. ओमप्रकाश सिंह
डॉ. शीतल शर्मा
डॉ. मलखान सिंह

संपादकीय सहयोग

सुमेर सिंह
डॉ. शिवम शर्मा

टंकण सहयोग

दीपक कुमार

फोटो

वकील अहमद

संपर्कः
राजभाषा प्रकोष्ठ
प्रशासन भवन
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
दूरभाषः 91-11-26704023
ईमेलः hindiunit@mail.jnu.ac.in

संपादन/संचालनः अवैतनिक

संपादकीय/2

विशेष/3
वेदों में निहित राष्ट्रीयता : संगीता कुमारी

धरोहर/6
जारवा—आदिम जनजाति से आधुनिक समाज तक का सफरः कल्पना वर्मा

लेखक की दुनियाः कथा/8-17
पदयात्री : संदीप मील
बड़का साहब : नवीन सिंह
उभरती महामारी : मोहन पुरी

लेखक की दुनिया : कविता/18-24
देवशंकर नवीन, सुशांत शर्मा, दीप्ती शर्मा, नवीन यादव, प्रमोद पांडेय, वकील अहमद, सत्यम भारती

जेएनयूपन/25
जेएनयू की यादें : अविनाश कुमार

अनुवाद/28
भारत में ब्रिटिश शासन : कार्ल मार्क्स;
अनुवादक : प्रशांत कुमार पाण्डेय

काव्य सृजन/30-31
जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता : सोन चिरई

लेख/32-48
ओमप्रकाश सैन, विकास शुक्ल, अभिषेक सौरभ, डॉ सत्येन्द्र कुमार, प्रियंका कुमारी

डायरी/49
तुर्की में हिंदी और अंग्रेजी : गंगा सहाय मीणा

स्वास्थ्य/51
अष्टांग योग का परिचय : अजय कुमार शास्त्री

गंगा ढाबा/53
जेएनयू में दुर्गा पूजा का आरंभ और 'सेकुलरिज्म' का छद्मः व्यालोक

गतिविधियां/55
प्रियंका श्रीवास्तव, धीरेन्द्र कुमार, सोनम सिंह, नीरज कुमार मिश्र, चंचल कुमार

जेएनयू की इस गृह पत्रिका में प्रकाशित विचार स्वयं लेखक के हैं। उनसे विश्वविद्यालय अथवा संपादक-मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, उसी तरह 'भारतीय साहित्य' को एक राष्ट्र के रूप में भारत की एकता का दर्पण कहा जा सकता है। 'भारतीय साहित्य' की आधारशिला भाषा के स्तर पर संस्कृत साहित्य ने, तो विषय के स्तर पर 'राम' और 'कृष्ण' ने रखी है। 'रामायण' और 'महाभारत' कितनी भाषाओं में और कितने रूपों में उपलब्ध है, उसकी बस गणना की जा सकती है। अपने निबंध 'भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या' में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, "भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है। इसका इतिहास बहुत पुराना है। इस इतिहास का जितना अंश जाना जा सकता है, उसकी अपेक्षा जितना नहीं जाना जा सकता, वह और भी पुराना और महत्त्वपूर्ण है।"

यहाँ, मैं हिन्दी साहित्य के आदिकाल के एक प्रसंग की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। इस प्रसंग की चर्चा इसलिए जरूरी है, जिससे हम यह जान सकें कि अगर हमारी इतिहास-दृष्टि जबरन 'भाषाई अस्मिताओं' के दायरे में बांधी गयी, तो वह न सिर्फ देश की एकता में बाधक बनेगी बल्कि आगे चलकर हमें शर्मसार भी करेगी।

हिन्दी की शुरुआत भले ही शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती हो लेकिन उसका इतिहास पूर्वी अपभ्रंश में लिखे गए 'चर्यागीतिकोश' और 'दोहाकोष' से शुरू होता है, जिसे हम 'सिद्ध साहित्य' के नाम से जानते हैं। इन सिद्ध संतों का विस्तार समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में था। भारत की लगभग सभी आधुनिक भाषाओं में इन सिद्धों की रचनाएँ उपलब्ध हैं। देश भर की भाषाओं में निर्गुण संतों का जो पश्चवर्ती साहित्य है, उस पर भी इन सिद्धों का प्रभाव देखा जा सकता है। सिद्ध संत न सिर्फ आधुनिक आर्यभाषाओं के आरम्भिक रचनाकार रहे हैं, बल्कि द्रविड़ भाषाओं में भी उन्होंने रचनाएँ की हैं। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि सिद्ध संत दक्षिण भारत में भी हुए हैं और 'चौरासी सिद्धों' में भी वे शामिल हैं।

सुनीति कुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक 'बांग्ला भाषा का इतिहास' में सिद्धों और उनकी रचनाओं पर विचार किया है। लेकिन यहाँ उनकी बहस का केंद्र सिद्ध संतो की कविता या उसकी काव्य भाषा नहीं है बल्कि इस बात पर है कि सिद्ध काव्य मागधी की रचना है या बांग्ला की। उसके बाद बड़े उत्साह से बांग्ला के साहित्यकार और इतिहासकार 'चर्यागीति' के सहारे बांग्ला भाषा का इतिहास गढ़ते रहे। मुश्किल तब खड़ी हुई जब हिन्दी, मैथिली और दूसरी भाषाओं के विद्वानों ने सिद्ध साहित्य ख़ासकर चर्यागीतिकोश पर विचार करना शुरू किया तो पाया कि न सिर्फ इसकी पाण्डुलिपि पुरानी 'मिथिलाक्षर' लिपि में है बल्कि इस काव्य की भावधारा सीधे कबीर और हिन्दी के दूसरे निर्गुण संतों में बहती देखी जा सकती है।

'भाषायी अस्मिता' किस तरह एक राष्ट्र के रूप में हमारी साझी विरासत को अनदेखा करती है और उसे नुकसान पहुँचाती है यह प्रसंग उसका एक उदाहरण है। बांग्ला विद्वानों के मताग्रह के बावजूद आज इस बात पर सहमत हुआ जा सकता है कि 'सिद्ध साहित्य' भारतीय साहित्य की साझी विरासत है और इन संतों की भावधारा समूचे भारतीय साहित्य में प्रवाहमान है।

- सुधीर प्रताप सिंह

वेदों में निहित राष्ट्रीयता

डॉ. संगीता कुमारी

'साहित्य' या 'कृति समाज का दर्पण है। दूसरे शब्दों में में, वही साहित्य, साहित्य है जिसमें समाज का समग्र चित्रण हो। समाज के समग्र चित्रण से तात्पर्य साहित्य में तत्कालीन समाज का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा वैज्ञानिक प्रत्येक पहलू का यथार्थ चित्रण है और वैदिक वाङ्मय भी इससे पृथक नहीं हैं। चारों वेद (ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद) एवं उनकी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद एवं वेदांग इसका कमोवेश भाग में अनुशीलन करती हुई प्रतीत होती हैं तथा इस दृष्टिकोण से इसमें राष्ट्रीयता विषयक विचार भी विद्यमान हैं। ठीक ही कहा गया है, "साहित्य अपने व्यापक अर्थ में समाज के गूंगे इतिहास का मुखर सहोदर है।"

वेदों के अनुशीलन से उस युग की राष्ट्रीयता संबंधी धारणाओं का परिज्ञान भली-भाँति होता है। अतः आज के लोकतांत्रिक उथल-पुथल को देखते हुए मेरा ध्यान इस सर्वोत्कृष्ट एवं प्राचीनतम साहित्य में वर्णित राज-व्यवस्था एवं राष्ट्रीयता की ओर गया, जिससे आज की लोकतांत्रिक समस्या का समाधान हो सके। अतः प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य वेदों में यह खोज करने का प्रयत्न करना है कि इसमें शुद्ध साहित्यिक तत्त्वों के अतिरिक्त राष्ट्रीयता के तत्त्वों पर क्या प्रकाश पड़ता है और संकेत मिलते हैं।

अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवनदर्शन आदि के प्रति देशवासियों के हृदय में, जो नैसर्गिक स्वाभिमान होता है, उसे राष्ट्रीय भावना कहते हैं। यही वह भावना है, जिसके वशीभूत होकर लोग अपने राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व हंसते-हंसते न्यौछावर कर दिया करते हैं। इस उदात्त भावना के बिना कोई राष्ट्र स्वाभिमान से जीवित नहीं रह सकता है।

राष्ट्र-निर्माण के लिए जरूरी घटकों में देश, जाति, धर्म, संस्कृति और भाषा को मान्यता दी जाती है। देश से आशय उसके अपने भूगोल से है, जाति वहाँ रहने वाले जनसमुदाय की बोधक है और फिर सबको धारण करने वाले धर्म का होना भी जरूरी है। यहाँ धर्म संकीर्ण अर्थ का वाचक नहीं है। संस्कृति उस राष्ट्र के जन-समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति यदि उच्चतम चिंतन का मूर्त रूप है, तो भाषा उसका माध्यम है। स्पष्टतः किसी भी राष्ट्र की एकता इन सभी घटकों के प्रति गहरी आत्मीयता पर निर्भर करती है। राष्ट्रीयता के लिए अत्यावश्यक है— बाहरी तौर पर दिखाई देने वाले अंतर के बावजूद आंतरिक समभावना और संगठन।

मनुष्य की एक स्वाभाविक मनोवृत्ति के रूप में विकसित राष्ट्रीयता राष्ट्र के भौतिक और आन्तरिक – समस्त प्रकार के कल्याण की कामना का संवहन करती है।

आदि कवि वाल्मीकि की अमर कृति 'रामायण', महर्षि वेद व्यास की महनीय कृति 'महाभारत', कवि कुलगुरु कालिदास का 'रघुवंश' आदि सभी श्रेष्ठ रचनाओं में राष्ट्रीयता की यह भावना विद्यमान है। इन समस्त काव्य-सरिताओं में राष्ट्रीयता का जो पीयूष प्रवाहित हो रहा है, इसकी गंगोत्री है— 'सृष्टि के प्रारम्भ में मानव-मात्र के कल्याण के लिए ऋषियों के पावन अन्तः करणों में प्रकाशित, वेद-ज्ञान।

वेदों में राष्ट्रीयता की भावना अपने महनीय रूप में प्रदर्शित है। ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद के संहिता ग्रंथों में राष्ट्र के उत्कर्ष के कतिपय नीतिसूत्रों का स्पष्ट उल्लेख मिलता हैं। अथर्ववेद (12, 1) का पूरा पृथ्वी सूक्त ही हमारा राष्ट्रगीत है, जिसमें विविध प्रकार के वर्ण, जाति, धर्म, जनपद से सम्बद्ध मानवों को एकसूत्र में संघटित रहने का उपाय बताया गया है। जिसका यह मन्त्र 'माता भूमिः पूत्रोऽहं पृथिव्याः' तो विशेष प्रसिद्ध है। अथर्ववेद के "भूमि-सूक्त" में सब राष्ट्रवासियों को वाणी-भेद, भाषा-भेद और धर्मभेद रहने की अवस्था में भी प्रेम से मिल कर रहने की बात कही गई है। कहा गया— "*यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊजस्तन्वाः संवभूवुः। तासु नो धेह्यमि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥*" (अथर्ववेद 12/1)

भूमि-सूक्त में राष्ट्र-भूमि का वर्णन करते हुए उसे "धर्मणा धृता" अर्थात् धर्म से धारित की हुई भी कहा गया है। सत्य, न्याय, दया, तपस्विता, संयम और प्राणि-मात्र के प्रति प्रेमभाव आदि धर्म के अंग जब तक राष्ट्रवासियों के जीवन में न होंगे तब तक राष्ट्र किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता। इसीलिए बार-बार बल दिया गया है कि राष्ट्र के निवासियों में – सामान्य प्रजाजन और राज्य कर्मचारी दोनों में – धर्म के इन सब अंगों का पूर्ण निवास रहना चाहिए। वेदों में कहा गया है कि हमारे राष्ट्रवासी विविध भाषाओं और नाना धर्मों वाले हैं— "*जनं*

बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपम्फुरन्ती॥"

वेदों में **राष्ट्रोन्नत्ति के मूल सात तत्त्व** निर्दिष्ट किए गए हैं– बृहत् सत्य, बृहत् ऋत्, क्षत्रशक्ति, दीक्षा, तप, ब्रह्मशक्ति और यज्ञ। इन सात महाशक्तियों के आधार पर ही कोई राष्ट्र खड़ा हो सकता है, स्थिर रह सकता है, आगे बढ़ सकता है। और सब प्रकार की उन्नति कर सकता है–

"सत्यं बृहदतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य भवस्य पत्न्यु लोकं पृथिवीं नः कृणोतु॥"

वैदिक कालीन राष्ट्रीय ध्वज के संबंध में कहा गया है–

"एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः।"

अर्थात्, "ये विजिगीषु सेनाएँ (देवसेनाः) सूर्य के झण्डे वाली (सूर्यकेतवः) और एकचित होकर चल रही है।"

सूर्य के चिह्न से अंकित झण्डा इस बात का द्योतक है। कि हमारा राष्ट्र ज्ञान, सत्य और न्याय का पुजारी है और उस ज्ञान, सत्य और न्याय की रक्षा के लिए वह तेज और शक्ति की उपासना करता है।

अथर्ववेद का सूत्र 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' प्रत्येक व्यक्ति के सामने पृथ्वीपुत्र होने का आदर्श रखता है। इसी बात को रामायणकार वाल्मीकि राम के मुख से कुछ इस तरह कहलवाते हैं, "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' अपनी जन्मभूमि या भूखण्ड के प्रति प्रेम की इसी अभिव्यक्ति से 'राष्ट्र' की अवधारणा ने जन्म लिया। 'राष्ट्र' का प्रयोग हमारी परम्परा में तीन परस्पर सम्बद्ध अर्थों में होता आ रहा है। पहला राज्य, देश या साम्राज्य के अर्थ में, जैसे राष्ट्रदुर्गबलानि-अमरकोश, मनुस्मृति (7/109, 10/61), दूसरा जिले, देश, प्रदेश या मंडल (मनुस्मृति 7/73) के अर्थ में, जैसा आज भी सौराष्ट्र या महाराष्ट्र जैसे शब्दों में होता है, तथा तीसरा प्रजा, जनता या अधिवासी के अर्थ में (मनुस्मृति 9/254)। स्पष्टतः, जब हम 'राष्ट्र' की बात करते हैं, तब उसमें भूमि, जन और उनकी संस्कृति– सब कुछ समाहित हो जाते हैं। यजुर्वेद इसी राष्ट्र के प्रति जागरूक होने का आह्वान करता है, 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहितः।' स्थानीयता के आग्रहों के बावजूद भारतीय जनमानस में 'आसेतुहिमालय जैसे विस्तृत भूभाग के प्रति गहरा अनुराग सहस्राब्दियों से रहा है। यज्ञानुष्ठानों में 'जम्बूदीपे भरतखण्डे आर्यावर्तदेशान्तर्गते कहकर अपनी भूमि के प्रति लगाव की अभिव्यक्ति कई शताब्दियों से जारी है। पुराणकालीन भारत का चित्र समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण के भूभाग को समेटता है, जिसकी प्रजा या संतति को भारती की संज्ञा मिली हुई है–

उत्तरैण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चौव दक्षिणे। वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्रा संततिः। (ब्रह्मपुराण) विष्णु पुराण (20/3/24) तो इसे स्वर्ग से भी बेहतर ठहराता है– "गायन्ति देवाः किल गीतिकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे। स्वर्गापर्गास्पद हेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात्।"

अर्थात् भारत में जन्म लेना सौभाग्य की बात है, तभी देवगण स्वर्ग का सुख भोगते हुए भी मोक्ष साधना के लिए कर्मभूमि भारत में जन्म लेने की कामना करते हैं।

परन्तु, हमें सर्वप्रथम वैदिक ऋषियों की वाणी में राष्ट्रीयता का गौरव गान सुनाई देता है। विश्व को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का राजमार्ग प्रदर्शित करने वाले; आत्मा और परमात्मा का सत्यस्वरूप प्रतिपादित करने वाले तथा ज्ञान, विज्ञान के आलोक से वसुधा को आलोकित करने वाले वेदों में यत्र-तत्र सर्वत्र राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित होता रहा है। लौकिक कवियों की कृतियों में भी अभिव्यंजित राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित होता रहा है। परन्तु लौकिक कवियों की अभिव्यंजित राष्ट्रीयता में तथा वैदिक संहिताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीयता में एक मौलिक अन्तर यह है कि लौकिक कवियों का राष्ट्र प्रेम अपने-अपने राज्यों अथवा देशों और स्वदेशीय प्रजा के कल्याण तक सीमित है, जबकि वैदिक संहिताओं का राष्ट्र प्रेम सम्पूर्ण वसुधा को और प्राणीमात्र को अपने आंचल में समेटे हुए है। "यत्र विश्वं भवत्येक नीडम' की व्यापक दृष्टि वेदों में सर्वत्र परिलक्षित होती है। वेदों में अनेक स्थानों पर अपनी मातृभूमि की रक्षा में सर्वस्व समर्पण का सन्देश दिया गया है। वेदों में अनेक स्थानों पर अपनी मातृभूमि की मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई है, जिसे पढ़कर या सुनकर प्रत्येक देशवासी के हृदय में अपने देश के लिए गौरव का भाव पनपता है। वैदिक ऋषि अपनी मातृभूमि के वन-पर्वत, सरित-सागर आदि के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं, वहाँ निवास करने वाली प्रजा के सांस्कृतिक जीवन पर भी वे मुग्ध हैं। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त इस दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व साहित्य में अनुपम है। इस सूक्त में राष्ट्र प्रेम की ऐसी धारा प्रवाहित हो रही है, जिसके अवगाहन से रोम-रोम में राष्ट्रीयता हिलोरें लेने लगती हैं। अथर्ववेद का ऋषि अपनी जन्मभूमि के प्रति दिव्य भावों के स्फुरण के लिये कहता है– हमारे राष्ट्र की यह भूमि स्थल रूप में देखने पर केवल शिलाओं, पत्थरों और धूल-मिट्टी का ढेर प्रतीत होती है, किन्तु राष्ट्रवासियों द्वारा सम्यक् प्रकार से धारण किये जाने पर तथा इसे प्राणों से भी प्रिय समझ लेने पर, यही धरती राष्ट्रवासियों को आश्रय देने वाली मातृभूमि बन जाती है और हम सबको धारण कर लेती है। इस माँ के वक्षः स्थल में हिरण्यादि पदार्थ छिपे हुए है। यह अपने भक्तों

को इन सुवर्णादि से परिपूर्ण कर देती है, ऐसी मातृभूमि को हम नमन करते हैं–

'शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमि संधृता धृता। तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः। (अथर्ववेद 12/1/26)

अथर्ववेद के अतिरिक्त ऋग्वेद, यजुर्वेद में वर्णित राष्ट्रीयता के दिव्य भाव हृदय को आनन्द-विभोर कर देते है।

एक देश में जन्म लेने वाले हम सब देशवासियों में एक रागात्मक सुदृढ़ बन्धुता का उदय होता है, जिससे प्रेरित होकर हम लोग छोटे-बड़े (ज्येष्ठत्व, कनिष्ठत्व) का भेदभाव भूलकर और सभी एक ही धरती माता की गोद से उत्पन्न हुए हैं (पृश्निमातरः), ऐसा मानकर अपनी मातृभूमि के विकास एवं रक्षा में पूर्ण शक्ति से लगाने में ही गौरव अनुभव करते हैं 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।' (ऋग्वेद 5/60/5)

'राष्ट्र' शब्द वेद के अनेक मन्त्रों में प्राप्त होता है। राष्ट्र के सर्वविध कल्याण के लिये राष्ट्र भत यज्ञ का वर्णन (यजुर्वेद के 9.10 अध्याय में) विस्तार से किया गया है। यहाँ तक कि विवाह संस्कार के अवसर पर भी राष्ट्रभृत यज्ञ का विधान किया गया है।

वेद का भूमि-सूक्त तो वास्तव में किसी एक विशेष देश का राष्ट्रीय गीत न होकर मानवमात्र का राष्ट्रीय गीत है। इसमें तो एक आदर्श राष्ट्र की कल्पना करके उसके राष्ट्रभक्त प्रजाजनों द्वारा उसकी महिमा और विभूति के गीत गवाए गए हैं और इस प्रकार एक आदर्श राष्ट्र का चित्र उपस्थित करके यह उपदेश दिया गया है कि राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए राष्ट्र में क्या-क्या कुछ होना चाहिए।

इस प्रकार वेदों में निहित राष्ट्रीयता वर्तमान में अत्यधिक प्रासंगिक हो गया है। आजादी की रक्षा तभी सम्भव है, जब हम राष्ट्रीयता के निर्धारक तत्त्वों की खरी पहचान ही नहीं रखें, उन्हें जीवन में आत्मसात् भी करें। आज जब देश में अलग-अलग प्रांत और इलाकों के नाम पर अलगाव और विभेद के बीज बोए जा रहे हैं और अखंड राष्ट्रीयता को खंडित राष्ट्रीयता में ढाले जाने के षडयंत्र जारी हैं, तब वेदों के राष्ट्रीय स्वर की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है। इसी कारणवश गिरिजाकुमार माथुर जैसे आधुनिक कवि भी 'पंद्रह अगस्त' को केवल रस्म अदायगी के रूप में नहीं लेते हैं, इसके जरिये वे गहरी सजगता का आह्वान भी करते हैं, जिसकी जरूरत आज ज्यादा महसूस हो रही है–

"ऊँची हुई मशाल हमारी आगे कठिन डगर है। शत्रु हट गया, लेकिन उसकी छायाओं का डर है। शोषण से मृत है समाज कमजोर हमारा घर है। किन्तु आ रही नई जिन्दगी।

संदर्भ-ग्रंथ

1. झा एवं श्रीमाली (1984), प्राचीन भारत का इतिहास,। हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
2. गैरोला वाचस्पति (1997), वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
3. कुमारी डॉ. किरण (2001), वैदिक साहित्य और संस्कृति, न्यू भारती बुक कौर्पोरेशन, दिल्ली।
4. उपाध्याय आचार्य बलदेव (2006), वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा निकेतन, वाराणसी।
5. वेदवाचस्पति वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत (1994), वेद का राष्ट्रीय गीत, श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, हरिद्वार।
6. वेदवाचस्पति वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत, वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
7. शर्मा रीता (2004), प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर।
8. ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

***

शिक्षण एक बहुत ही महान पेशा है जो किसी व्यक्ति के चरित्र, क्षमता और भविष्य को आकार देता है। अगर लोग मुझे एक अच्छे शिक्षक के रूप में याद रखते हैं तो मेरे लिए यह सबसे बड़ा समान होगा।

- डॉ. अब्दुल कलाम

जारवा–आदिम जनजाति से आधुनिक समाज तक का सफर

कल्पना वर्मा

अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह भारत के बंगाल खाड़ी और अंडमान सागर के मध्य स्थित ऐसे टापुओं का समूह है जो अद्वितीय एवं अप्रतिम प्राकृतिक सुंदरता से परिपूर्ण श्रृंगार की नई परिभाषा को जन्म देता है। यहाँ एक ओर घने बरसाती वनों का संगीत है तो दूसरी ओर आदिम जनजातियों का निवास जो आज के आधुनिक युग में भी आदि कालीन सभ्यता का परिचय देता है। ये आदिम जनजातियाँ इन द्वीपों पर सदियों से रहती चली आ रही है और कुछ जनजातियों पर तो आधुनिक सभ्यता या आधुनिक परिवेश कोई छाप तक दिखाई नहीं देती।

अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह में आदिम जनजातियों की छः प्रजातियाँ हैं : जारवा, ओंगी, सेंटीनल, निकोबारी और शोम्पेन। इनमें से जारवा, ग्रेट अंडमानी, ओंगी और सेंटीनल अफ्रीकी मूल के माने जाते हैं तथा निकोबारी और शोम्पेन के पूर्वज बर्मा मूल के निवासी माने जाते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि निकोबारी और शोम्पेन के पूर्वज जापानी मूल के थे चूंकि जापान ने भी अंडमान पर एक समय अपना आधिपत्य स्थापित किया था। इनके प्रादुर्भाव के पीछे कई अवधारणाएँ हैं। प्राचीन काल के कुछ ग्रन्थों में इन द्वीप समूह में निर्वस्त्र मानवभक्षी मनुष्यों का उल्लेख मिलता है। एक अन्य मान्यता है कि हड्डियों से लदा जहाज़ इन द्वीपों के समीप समुद्र के गर्भ में समा गया। उनमें से कुछ तैरकर तट तक पहुँचने में सफ़ल रहे और वे इन्हीं द्वीप समूहों में बस गए। एक भौगोलिक तथ्य यह भी स्थापित किया जा सकता है कि जब भारत और वर्मा अफ्रीका से अलग होकर उत्तरी दिशा में बढ़ने लगे, तब उस भू-भाग के साथ कुछ आदि मानव भी अफ्रीका से अलग हो गए और कालांतर में इन द्वीप समूहों में बस गए। यह भी माना जाता है कि वे बर्मा के रास्ते से आए थे। इस लेख में हम केवल जारवा के सफर के बारे में चर्चा करेंगे।

जारवा– एक परिचय

बहुत पहले इस जन-जाति का नाम अंग था, किन्तु पोर्ट ब्लेयर में रहने वाले इन्हे "जारवा" कहते थे और इस प्रकार से यह प्रजाति जारवा के नाम से जाने जानी लगी है। जारवा दक्षिण अंडमान के तिरुर से लेकर मध्य अंडमान के कौशल्या नगर तक विस्तृत आरक्षित वन क्षेत्र में निवास करते हैं और कुछ स्पाइक आइलैंड के पश्चिमी तट पर भी बसे हुए हैं। अंडमान ट्रंक रोड के आस-पास के जंगलों में भी इनकी उपस्थिति पाई जाती है। इनके आवासों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– अर्ध स्थायी, अस्थायी और छोटी बस्तियाँ।

अर्ध स्थायी बस्तियों में एक बड़ी पर्ण कुटी का उपयोग सामुदायिक कक्ष के रूप में किया जाता है। इस झोपड़े में वे डेकची, लकड़ी का सामान एवं फल-फूल रखते हैं। इनकी कुटीर में दीवार, दरवाजे और खिड़कियाँ नहीं होती हैं और ये चारों ओर से खुले होते हैं। जारवा की शारीरिक संरचना छोटी परंतु बलिष्ठ होती है। इनका रूप अफ्रीकी लोगों से मिलता-जुलता है तथा केश घुँघराले होते हैं। दाँत पैने (पर साफ) होते हैं और नाखून मजबूत। जारवा जाति में शरीर को महिला और पुरुष के पहचान का जरिया माना जाता है और वे मानवीय शरीर को अन्य प्राणी के शरीरों से भिन्न मानते हैं। वे गर्भधारण को शरीर की प्रक्रिया समझते हैं और रोग एवं मृत्यु को शरीर से जुड़ी हुई सांस्कृतिक पहलू मानते हैं।

जारवा जाति में अपने बदन को ढ़क कर रखने की कोई प्रथा नहीं है। ये विविध तरीकों से अपने को सजाते-संवारते हैं। लाल रंग के ऊन या कपड़ों को पत्तियों, सीपियों, कौड़ियों से लेसकर वस्त्र और आभूषण तैयार करते हैं। महिलाएं और पुरुष दोनों ही सफ़ेद चूने से अपने पूरे शरीर को रंगते हैं एवं अपने कपाल, मुंह, छाती, बाँहों और पैरों में ज्यामितीय चित्र बनाते हैं। जारवा का सबसे प्रिय रंग लाल होता है।

जारवा समुदाय में विवाह 13 से 14 वर्ष की आयु में ही हो जाती है। बालिका के सयानी होने पर उनके समुदाय में समारोह का आयोजन होता है तथा तब उसे युवती घोषित किया जाता है। इसी प्रकार यदि कोई बालक अपने स्वयं के प्रयासों से पहली बार शूकर का शिकार करके लाता है तो उसे युवक घोषित किया जाता है। समुदाय में ओझा का प्रचालन भी है। ऐसा माना जाता है कि उसके पास आलौकिक शक्तियाँ होती हैं और वह भगवान से सीधे संपर्क कर सकता है।

आदिम जन जाति से आधुनिक समाज का संपर्क

जारवा समाज के लोगों का संपर्क राजधानी क्षेत्र, पोर्ट-ब्लेयर में मूल भूत आवश्यकताओं तक ही सीमित है जिसमें खान-पान के लिए कुछ चीजों को खरीदना, अस्पताल का प्रयोग करना तथा व्यसन (जैसे तंबाकू और मद्य) का शिकार होना। पहले तो

जारवा बाहरी व्यक्तियों को देखते ही उन पर हमला कर देते थे, किन्तु अंडमान और निकोबार प्रशासन की पहल से उनसे संपर्क कार्यक्रम चलाया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रशासन सन 1974 में उत्तरी और मध्य अंडमान के जारवा तथा सन् 1989 में दक्षिण अंडमान के जारवा से संपर्क साधने में कामयाब हुआ। सन 1997 में कदमतल्ला जेट्टी के पास नाली में इनमैइ नामक एक जारवा का पैर टूट गया था और जारवा समुदाय ने उसे वहाँ छोड़ दिया था। प्रशासन ने उसकी मदद की और उसे अस्पताल पहुंचाकर उसे स्वस्थ कर दिया।

इसके परिणामस्वरूप उनके बाहरी लोगों के प्रति उग्र व्यवहार में परिवर्तन आया, वे धीरे-धीरे आधुनिक समाज के समीप आने लगे और आधुनिक समाज के प्रति उनके रवैये, सोच और संपर्क में बदलाव आया। आज पोर्ट-ब्लेयर के जी.बी. पंत अस्पताल में जारवा का एक अलग वार्ड है जहां जारवा समुदाय के लोग अपनी चिकित्सा के लिए आते हैं। एक बीमार जारवा व्यक्ति के साथ उसका पूरा समुदाय आता है। इन्हें शोषण से सुरक्षा प्रदान करने के लिए इनके चारों ओर पुलिस कर्मियों का घेरा रहता है। जारवा वार्ड में अस्पताल कर्मियों के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को जाने की इजाजत नहीं है। बीमार व्यक्ति के ठीक होने के उपरांत उसे रंग-बिरंगे फूलों से सजाया जाता है तथा पूरा समुदाय अपने पारंपरिक गीतों को गाता है।

आधुनिक समाज के संपर्क में आने के बाद उन्होंने अपनी पाक कला में भी कुछ परिवर्तन किए। पहले तो जारवा जंगलों में अपने तीर-धनुष से शिकार कर कच्चा मांस खाते थे, परंतु अब वे पकाकर भी खाने लगे हैं। इनकी पाक विधि के तीन प्रकार होते हैं, नामतः जलाना, उबालना, सेंककर खाना। इसकी तुलना यदि आज के शहरी जीवन में स्वास्थ्य के प्रति नई चेतना से करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जारवा समुदाय अपने स्वास्थ्य को लेकर शुरू से ही सचेत है। वे अपने खान-पान में खाद्य सामग्रियों की उपयोगिता पर भी ध्यान देते हैं। इनके खान-पान में विभिन्न प्रकार के फल, कन्द-मूल, शहद, जुंगली बादाम, तेंदू, आम, सीप, मछली, चिड़ियाँ, कछुए, जंगली शूकर आदि शामिल हैं। उनके खाने का समय नियत नहीं होता है। जब भी वे क्षुधातुर होते हैं, तब वे अपनी क्षुधा शांत कर लेते हैं। उनकी जाति में पारिवारिक रसोईघर और सामुदायिक रसोईघर की प्रथा है। परिवार द्वारा लाई गई सामग्रियों को पकाकर या फिर शूकर और भारी तादात में जंगली कटहल लाने पर इन्हें बड़े चूल्हे में पकाकर वे समुदाय में बांटते हैं। इनके खान-पान में न तो नमक का और न ही मसालों का उपयोग होता है।

आधुनिकता का कहें या परंपरा का, उनके समुदाय में भी शादी से पूर्व सगाई की प्रथा है। शादी के अवसर पर दूल्हा दुल्हन अपने-अपने शरीरों को रंगों से चित्रकारी करते हुए सजाते हैं; पत्तियों, फूलों और जड़ी-बूटियों से बनी मालाएँ पहनते हैं। दुल्हन को दूल्हे की गोद में बैठाकर शादी की विधि सम्पन्न होती है। इनके यहाँ भी शादियाँ रात में ही होती हैं।

जारवा शरीर ही उनके आवागमन का साधन है। बिना रुके 20 से 30 किलोमीटर की यात्रा करना उनके लिए सामान्य बात है। आठ-दस सूखे बांस की गठरी को रस्सी से बांधकर, नाव आकार दिया जाता है और उस पर सवार होकर वे एक द्वीप से दूसरे द्वीप की यात्रा करते हैं। आधुनिक द्वीप के संपर्क में आने के बाद अंडमान तथा निकोबार प्रशासन ने उन्हे एक द्वीप से दूसरे द्वीप तक जाने के लिए इंजिन चालित छोटी-छोटी नौकाएँ मुहैया कराई हैं और सड़क मार्ग से यात्रा करने के लिए वे बस सेवा का प्रयोग करते हैं। उन्हें बस की छतों पर यात्रा करना अधिक सुखद लगता है। शायद हवा से बातें करना और प्राकृतिक सुंदरता से घिरे रहना, उनके इस सुख का कारण हो।

आजकल कुछ जारवा तंबाकू और मद्य के आदी होने लगे हैं। जारवा को सबसे अधिक आवश्यकता चिकित्सा की पड़ती है। आजकल वे कदमतल्ला और पोर्ट ब्लेयर के तुशानबाद में स्थित अस्पतालों में चिकित्सा करवाने के लिए आगे आने लगे हैं। वे अपने क्षेत्र में शिकार करने वालों को पुलिस के हवाले करने लगे हैं और आधुनिक परिधानों के प्रति गहरी रूचि दिखने लगे हैं।

यह निर्विवाद सत्य है कि आज जारवा समुदाय को शिक्षा की भी आवश्यकता है और शिक्षा के अभाव में वे कई मूल अधिकारों से वंचित रह जाते हैं। क्या हम इस बात को नकार सकते हैं कि जारवा भी उतने ही भारतीय नागरिक हैं जितने कि हम? इस कारण भारतीय नागरिकों को प्राप्त सारे अधिकार भी उन्हें हासिल हैं। पुलिस उनके क्षेत्रों के संरक्षण में जुटी हुई है तो अन्य लोगों को उनके क्षेत्रों में जाने की मनाही है। यह एक ऐसी जाति जिसके पास विलक्षण प्रतिभाएँ है। यहाँ तक कि वे तीर के अचूक निशाने से मछलियों को भी मार सकते हैं।

एक शिक्षित समाज को भी यह समझना चाहिए कि एक जाति के संरक्षण की आवश्यकता इसलिए पड़ी है क्योंकि हम अभी भी एक अद्भुत समुदाय को खोने के डर की संवेदनाओं को समझने की कोशिश नहीं कर रहे। यदि एक समुदाय विलुप्त हो जाए तो हम भारतीय संस्कृति से एक परंपरा के हनन में भागीदार होंगे। उनके आवास के आस-पास रहने वाले द्वीपवासियों के साथ-साथ पर्यटकों को भी संवेदनशील बनना होगा। जारवा और उनकी परंपरा व संस्कृति को सँजोने से ही वे आधुनिकता को बेहतर तरीके से अपना पाएंगे।

***

पदयात्री

संदीप मील

वह क्लर्क, अध्यापक, सिपाही या कोई भी मध्यमवर्ग का इंसान हो सकता है जिसने दफ्तर जाने के लिये तो एक बाइक खरीद रखी हो मगर बाकी के सारे काम पैदल ही करता हो। बगल से दूध लाने से लेकर सब्जी लाने तक, या फिर ऐसा इंसान भी हो सकता है कि जिसके पास बाइक-साईकिल कुछ भी नहीं, सिवाय दो टांगों के। कोई भी हो सकता है मगर वह सड़क पर पैदल घूमता था। उस पदयात्री का घर एक बड़े-से शहर की व्यस्ततम सड़क के किनारे था। वह रोज़ घर से निकलता था तो एक ही चिंता ज़हन में होती कि शाम को सलामत वापस आयेगा क्या!

हर दिन की तरह आज सुबह की सैर के लिये घर के दरवाज़े से पहला कदम बाहर निकालने से पहले ही इस आदमी ने सड़क के दायीं और बायीं तरफ का जायजा लिया। सड़क बिल्कुल खाली थी। इसे बहुत गहरा संतोष हुआ और इस संतोष का नतीजा इसके मुंह पर दिखा। एक हल्की-सी मुस्कान थी। चूंकि सड़क खाली थी और मन भी प्रफुल्लित था तो कुछ गुनगुनाना लाजमी था। ऐसे माहौल में इंसान कोई खुशी का गीत ही अक्सर गुनगुनाता है। इस आदमी ने भी ऐसा ही किया। गांव में सुबह खेत की तरफ जाते वक्त किसान द्वारा गुनगुनाया जाने वाला एक लोकगीत इस वक्त उसकी जुबां पर था। अब यह तो आप समझ ही चुके होंगे कि यह आदमी कभी गांव में रहता था और किसानी से भी नाता था। हालांकि इस सुबह जिसकी मैं बात कर रहा हूं, उस समय के इस आदमी के पहनावे से आप उसके अतीत के बारे में कोई भी अंदाज़ नहीं लगा सकते हैं। हाफ पेंट और टी-शर्ट अब भी शायद उसके गांव में सुबह के वक्त कोई खेत में पहनकर नहीं जाता होगा।

वह आदमी जो लोकगीत गुनगुना रहा था उसी से उसके अतीत का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। उस गीत के बोलों में वह इतना डूब चुका था कि यह भूल गया कि वह सड़क के किनारे चल रहा है। खाली ही सही लेकिन जब सड़क थी तो वाहन कभी भी आ सकते थे। हालांकि आज कोई वाहन नहीं आया, वह खुद ही चलकर डिवाइडर से टकरा गया। टकराहट इतनीभर थी कि दायें पैर की ठोकर लगी थी और चप्पल पहनने के कारण अंगूठे का नाखून छिल गया था। उसे अपने आप पर गुस्सा आया। गुस्से की दो वजहें थी। पहली वजह तो यह थी कि खाली सड़क हुई तो क्या हुआ। इंसान को ध्यान से चलना चाहिये। दूसरी वजह यह थी कि उसे अचानक याद आया कि जब गांव में खेत में जाते वक्त यह लोकगीत गाते हैं तो चप्पल पहनकर नहीं जाते। जूती पहनकर जाते हैं। ठोकरें तो वहां भी लगती हैं लेकिन अंगूठे नहीं छिलते।

सुबह से पहली बार किसी वाहन ने उसे क्रॉस किया और वह ट्रक था। बड़ी आसानी से चला गया बगल से गुजरता हुआ। हॉर्न बजाने की जरूरत भी महसूस नहीं हुई। जबकि अन्य दिनों में तो ट्रक का पास से गुजरना मौत का बगल से निकलने जैसा अहसास देता था। अब उसे थोड़ी तसल्ली हो गई थी। वह हल्की-सी दौड़ लगाने लगा जो शायद भागने और तेज चलने के बीच की स्थिति थी। इस दौड़ में वह लोकगीत वाली धुन छूट गई थी।

अचानक उसके बगल से तेज़ रफ्तार वाली एक कार निकली। वह इतनी तेज़ दौड़ रही थी कि यह आदमी इतना भी नहीं देख सका कि इसका चालक पुरुष था या स्त्री। कुछ देर तक तो वह एकदम सुन्न हो चुका था। उसके जहन के सारे अहसास जम गये थे। उसे यह भी नहीं समझ में आ रहा था कि वह पूरा जिंदा है या उसके जिस्म का कोई हिस्सा कार के साथ चिपककर चला गया है। जब धीरे-धीरे उसके दिल ने धड़कना शुरु किया और दिमाग ने सोचना शुरु किया तब उसे ख्याल आया कि उसके और कार के बीच मुश्किल से चार इंच का फासला रहा होगा। वह डर चुका था। अगर यह चार इंच का फासला ना होता तो! तो शायद वह मर ही जाता और अगर मर जाता तो उसके परिवार को कौन संभालने वाला था।

अब उसके पास इतना साहस नहीं था कि मुख्य सड़क पर चले। वह फुटपाथ पर चलने लगा। यह पैदल चलने वालों के लिए ही बनी है। इस पर कोई खतरा नहीं होगा। शायद सलामत घर पहुंच जाये। एक बार तो उसने यह भी सोच लिया था कि यह सुबह की सैर बंद कर दे। बेवजह कोई भी टक्कर मार जायेगा। तभी इस बात का भी अहसास हुआ कि सुबह नहीं तो दोपहर को या शाम को या रात को, क्या कभी भी घर से बाहर ना निकले। ये टक्कर मारने वाले तो हर समय

सड़क पर मौजूद रहते हैं। घर में कैद होकर काम भी तो नहीं चल सकता उस जैसे सामान्य आदमी का। इतने में सामने से एक बाइक वाला आता दिखा हवा में कलाबाजियां दिखाते हुये। चूंकि इसे उस आदमी ने दूर से ही देख लिया था तो वह पहले से ही सतर्क होकर फुटपाथ के किनारे दीवार से चिपक गया था। बाइक वाले के निकलने के बाद उसने गहरी सांस ली और अपने आप को बचा पाने की छोटी-सी सफलता का अहसास भी हुआ उसे।

आगे एक मोड़ आया जिससे पहले एक बोर्ड लगा था, 'आगे खतरनाक मोड़ है।' वैसे रोज़ यह बोर्ड यहीं रहता है लेकिन इस पदयात्री की निगाहों में आज ही आया था। वह कुछ क्षण रुककर बोर्ड और मोड़ दोनों को ध्यान से देखा। उसे मोड़ कम, बोर्ड ज्यादा खतरनाक लगा। फिर वह वापस चला और यह सोचते हुए चला कि असल में तो सारी सड़क ही खतरनाक है। इस बाबत भी कोई बोर्ड होना चाहिए। सामने से एक बुढ़िया आ रही थी जिसके सिर पर लकड़ियां थी। पदयात्री उसे जानता नहीं था लेकिन जब उससे निगाहें मिली तो ऐसा महसूस हुआ कि वह भी शायद इसी संकट से गुजर रही हो।

अब आप यह तो जानते ही हैं कि सुबह के वक्त घूमते समय बड़े खूबसूरत विचार आते है दिमाग में। पदयात्री को दूर एक पहाड़ दिख रहा था जिधर से सूरज सिर निकालता है। उसने सोचा कि अगर यह पहाड़ इस जगह ना होता तो शहर में सुबह जल्दी हो जाती। अब फुटपाथ खत्म हो चुका था क्योंकि यहां से अमीरों की कॉलोनी शुरु हो गई थी। ठीक इसी समय एक साइकिल वाला उसकी बगल से गुजरा जिसके घंटी नहीं थी। यह बात पदयात्री को बुरी लगी और उसने साइकिल वाले को मन में गाली दी। साइकिल वाले ने पीछे मुड़कर एक बार देखा जरूर था जैसे कि उसे गाली सुन गई हो। गाली सुनी नहीं थी लेकिन वह समझ गया था क्योंकि वह अभी-अभी पीछे एक बाइक वाले को मन में ऐसी ही गाली दी थी। बाइक वाले को भी गाली सुनी नहीं थी लेकिन वह समझ गया था क्योंकि कुछ देर पहले एक छोटी कार वाले को उसने भी वैसी ही गाली दी थी। छोटी कार वाले को भी गाली सुनी नहीं थी लेकिन वह भी समझ गया था क्योंकि उसने भी एक बड़ी कार वाले को वैसी ही गाली दी थी। बड़ी कार वाले ने ट्रक वाले को दी होगी। यह सोचते ही पदयात्री बड़ा खुश हुआ क्योंकि इस कड़ी में उसके नीचे कोई नहीं था जो उसको गाली देता हो। पहली बार उसे अपने पैदल चलने पर गर्व भी महसूस हुआ। अब तक तो वह पैदल चलने को मजबूरी ही समझता था।

सामने चार कुते झगड़ते हुए आ रहे थे। पदयात्री ने इन्हें देखते ही बगल से एक पत्थर उठा लिया डराने के लिये। उसे कुतों से बहुत डर लगता है क्योंकि बचपन में किसी कुते ने काट लिया था जिसकी वजह से उसे कई इंजेशन खाने पड़े थे। बहुत दर्द हुआ था। शायद कुतों का डर पदयात्री को ही होता है, गाड़ियों में बैठे लोगों को नहीं। चूंकि वह कुतों से तो आगे निकल गया था लेकिन पत्थर फेंकना भूल गया था। सामने से कुछ बच्चे स्कूल के लिये आ रहे थे। उन्होंने पदयात्री के हाथ में पत्थर देखा तो खिलखिलाकर हंसने लगे। पदयात्री के उनकी हंसी पर ध्यान दिया तब जाकर याद आया और उसने पत्थर फेंका।

अब सड़क पर वाहनों ही संख्या बढ़ गई थी। लोग अपने दफ्तर जाने की जल्दी में फुटपाथ पर भी बाइकें चलाने लगे थे। पदयात्री सतर्क हो गया। अचानक सामने उसे भीड़ नजर आयी। नजदीक जाने पर मालूम हुआ कि एक युवक को कोई कार वाला टक्कर मार गया था। युवक की घटनास्थल पर ही मौत हो गई थी। पदयात्री को ऐसा लगा कि उसके अंदर भी कुछ मर गया है। इसी समय वह भी यहां हो सकता था। एम्बुलेंस आयी और मृत शरीर को ले गई। कुछ ही देर में भीड़ भी जा चुकी थी। पदयात्री वहां अकेला खड़ा था। उस युवक के शरीर से निकले खून के धब्बे सड़क पर एक विचित्र किस्म का नक्शा बना रहे थे। इस नक्शे का देश पदयात्री ने न कभी ग्लोब पर देखा और ना ही कहीं सुना-पढ़ा था। फिर भी वह नक्शा उसे आकर्षित कर रहा था। वह खड़ा हुआ सोच रहा था कि यह नक्शा उस आदमी के गांव का या उसके घर का हो सकता है। तभी उसके दिमाग को झटका लगा और याद आया कि यह नक्शा तो उस युवक के शरीर का है। बिल्कुल वैसे का वैसा। जैसे कि किसी ने बनाया हो। तभी एक बाइक वाला उस नक्शे की टांगों के ऊपर से गुजरा। टायरों के चिपकी रेत ने नक्शे की टांगें काट दी। इस बार भी ऐसा हुआ कि पदयात्री को अपने घुटनों में असहनीय पीड़ा महसूस हुई। लेकिन जब देखा तो उसके पैर सलामत थे।

सड़क से कारों के काफिले शुरु हुए। शायद कोई बड़ा नेता जा रहा था। पहली ही कार ने उस नक्शे को पेट कुचला। पदयात्री ने अपना पेट देखा जो बाकायदा ठीक था। लेकिन दिमागी ने मान लिया था कि उसका पेट कुचला जा चुका है। पैर अलग हो गये हैं। असहनीय पीड़ा के कारण वह कराहने लगा। आसपास के कुछ लोग आकर कराहने के कारण जानने लगे। जब उसने बताया कि उसके पैरों पर से बाइक निकल गई है। पैर शरीर से अलग हो गये हैं। अभी कार वाला पेट के ऊपर से निकालकर ले गया है। उसकी सारी अंतड़ियां पिस गई हैं। वह सड़क के किनारे गिर चुका था। लोगों ने देखा कि पैर और पेट, सब सलामत तो हैं। तभी किसी एक ने उसे पागल बताया तो कुछ हंसकर वहां से विदा हो गये और कुछ हिकारत

की नजर से देखकर चलते बने।

नेता जी के काफिले में कई गाड़ियां थी। जब वह पूरा गुजर चुका था तब तक नक्शा भी मिट चुका था। खून का धब्बा भी नहीं था। सड़क का वह हिस्सा अब अलग से पहचाना नहीं जा सकता था। पदयात्री ने उस तरफ देखा तो उसे खुद के मरने का अहसास हुआ। अब उसे लगा कि वह शरीर नहीं, केवल संवेदना है जो बच गई है।

वह खड़ा हुआ और घर की तरफ चल दिया। वह सोच रहा था कि उसने ऐसा क्यों सोचा उस लड़के के बारे में। वह उसे जानता भी नहीं है। मानवीय स्तर पर एक सहानुभूति हो सकती है। वह अफसोस जता देता। आसपास के लोगों ने क्या सोचा होगा। हो सकता हो कोई उसके जान-पहचान का भी उसे इस हालत में देखा हो। कल को वह अन्य लोगों को मोहल्ले में कहेगा तो सब उसे पागल करार दे देंगे। लेकिन उसने जानबूझकर तो नहीं किया यह सब। अपने आप हो गया।

पदयात्री ने घर आकर ऑफिस में फोन करके छुट्टी मांग ली। घर के लोग उससे किसी बारे में बात करते तो हर बात को वह घुमा-फिराकर वह अपने शरीर के अंगों पर ले आता। वह तस्दीक कर रहा था कि सच में उसका जिस्म इस धरती पर है या नहीं। साथ में, यह भी चाह रहा था कि किसी घर वाले को यह हादसा मालूम भी ना हो जाये। यही वजह थी कि वह घर के हर सामान को छूकर, सूंघकर, देखकर अपने आप का अस्तित्व तलाश रहा था। इसी तलाश में उसे पुराने स्कूटर को छूने के दौरान अपना बायां पैर मिला। स्कूटर एक बार स्टार्ट होकर बंद हो गया। शायद स्कूटर में तेल खत्म हो गया हो क्योंकि स्कूटर को जब उसने चलाना छोड़ा था उस समय यह स्थिति आ गई थी कि इसके चलाने के लिये तेल के पैसे उसकी जेब पर भारी पड़ रहे थे। उसने यह भी सोचा कि कल परसों तक अगर तनख्वाह आ जाये तो स्कूटर ठीक करायेगा क्योंकि अब यह तो तय हो गया था कि सड़क पर पैदल चलना कम से कम उसके लिये खतरे से खाली नहीं है। वैसे तनख्वाह भी वक्त पर कहां आती है! पिछले सालों के रिकोर्ड से तो यही दिख रहा है। फिर तो मजबूरी में बाहर पैदल ही जाना पड़ेगा।

पदयात्री को बैचेनी कुछ ज्यादा महसूस हुई। उसे लगा कि छत पर जाकर कुछ खुली हवा प्राप्त की जाये तो राहत मिले। वह अपने ही घर की उन सीढ़ियों पर चढ़ने लगा जिन पर किसी जमाने में दिन में दस बार चढ़ने पर भी छटांगभर थकान महसूस नहीं होती। आज सांसें फूल रही थी। सीढ़ियों का बल्ब कई दिनों से फ्यूज़ था और किसी घर वाले को इतनी भी फुर्सत नहीं है कि बल्ब बदल दे। एकदम अंधेरा था। छत का दरवाजा भी बंद था तो रौशनी आने की कोई जगह ही नहीं थी। उसे चंद पलों के लिये तकरीबन सारे घर वालों पर गुस्सा आया और इसी गुस्से वाले पल में पता ही नहीं चला कि कब पैर फिसल गया। यह तो गनीमत थी कि दीवार पकड़ में आ गयी अन्यथा तो आगे वाले दांत टूट ही जाते। नाक तो फिर भी छिल ही गया। हां, इस बहाने नाक, मुंह और दांतों का अस्तित्व पदयात्री को मालूम हुआ। अपने आप को संभालते हुये वह किसी तरह से छत पर पहुंच ही गया। नाक पर कुछ गीलापन जैसा महसूस हुआ। हाथ से छूकर देखा तो खून था। आज उसे अपने खून को देखकर खुशी महसूस हुई क्योंकि वह सोच रहा था कि जब खून उसकी रगों में दौड़ रहा तो वह जिंदा है। इसी अहसास के कारण वह अपने हाथ पर लगे हुये खून को देखकर हंसने लगा। अचानक उसे ना जाने क्या ख्याल आया कि हाथ को चाटने लगा। हां, वह अपने खून का स्वाद देख रहा था। बिल्कुल वैसा ही था जैसा बचपन में होता था। जब वह पत्थरों से लोहे के छोटे टुकड़ों को कूटकर उनसे गाड़ी के टायर बनाने का संघर्ष किया करता था तो अचानक से उसी का हाथ फिसल जाता और उसकी अंगुली से खून निकलने लगता। तुरंत वह अपनी अंगुली को मुंह में लेकर चूसने लगता। फिर इधर-उधर देखता कि किसी घर वाले ने देख तो नहीं लिया है। जब उसकी निगाहें निश्चित हो जाती कि किसी ने नहीं देखा तो वह बड़े मज़े से उंगली चूसता रहता। नमकीन जैसा स्वाद आता। आज भी वैसा ही स्वाद आया।

पदयात्री अपने ही घर की छत से शहर को देख रहा था। पूरा शहर उसे पहले जैसा ही नज़र आ रहा था सिवाय सड़कों के। सड़कें इस समय तक व्यस्त हो गई थी। वाहनों की लम्बी कतारें दिख रही थी और पदयात्री को लगने लगा कि सड़क पर चलने वाला हर वाहन किसी इंसान को कुचल कर जा रहा है। खून के फंवारे छूट रहे हैं। उसका दिमाग चकराने लगा। वह उसी जगह बैठकर अपने बाल नोचने लगा। तभी उसे यह याद आया कि उसके शरीर पर बाल हैं जिन्हें नोचा जा सकता है। वह तेजी से सीढ़ियां उतरकर घर के अंदर आकर सो गया।

जब पदयात्री नींद से उठा तो वह बिल्कुल स्वस्थ था। उसके शरीर और दिमाग ठीक से काम कर रहा था। आजकल वह रोज़ घर के दरवाज़े तक आता है और अपने शरीर के सारे अंगों को देखता है जो बिल्कुल सही हैं। फिर भी वह दरवाज़े से बाहर सड़क पर नहीं आ पाता। पदयात्री को लगता है कि उस हादसे में उसकी कोई जरूरी चीज गायब हो गई है जो उसे सड़क पर ले जाती थी। शायद वह गायब हुई चीज पदयात्री का साहस हो सकती है।

***

बड़का साहब

नवीन सिंह

ट्विटर के माध्यम से भास्कर जी के आगमन की पूर्व सूचना प्राप्त हो रही थी फिर भी रामरतन अपनी निर्बाध निद्रा को गतिशील बनाये हुए था। बेशर्म किन्तु अति आज्ञाकारी अलार्म अपना हश्र जानते हुए भी निद्रा की गति को विराम देने हेतु अवरोधक बनकर आ खड़ा हुआ, परन्तु रोज की भाँति आज भी बैरियर तोड़कर गाड़ी आगे निकल चुकी थी। चिड़ियों का ट्विटर लोरी का काम कर रहा था। भास्कर जी का हीमोग्लोबिन कम हो रहा था और पीलिया बढ़ती जा रही थी, जिसके ज्वर-ताप का असर रामरतन की निद्रा पर पड़ना स्वाभाविक था। रामरतन ने आँखें खोली तो देखा, दीवार पर टँगी घड़ी मुँह टेढ़ा किए 120 अंश का कोण (8 AM) बना रही थी।

रामरतन ने झल्लाते हुए कहा 'उफ, आज भी सुबह उठने का संकल्प अधूरा रह गया'। तेजी से उठकर बाथरूम के पास पहुँचा तो देखा दोनों बाथरूम के दरवाजे बंद थे। अंदर से पानी गिरने की आवाज़ आ रही थी। 'अरे यार, इन लोगों को भी इसी समय उठना होता है, 9 बजे से मेरी कोचिंग है। आधे घंटे से ये लोग पता नहीं किस अनुसन्धान में व्यस्त हैं।

रामरतन ने आवाज़ लगाई– भैय्या! जल्दी कीजिये, मुझे कोचिंग जाना है।

अंदर से आकाशवाणी हुई– "रोका किसने है? जाओ न कोचिंग। दोपहर में सोकर उठेंगे ऊपर से जल्दबाजी भी दिखाएंगे। सारा कोर्स खत्म करके ही हम बाहर आएंगे। थोड़ी देर दबा के रखो ... उतावलेपन को।

इलाहाबाद के लगभग हर लॉज में यह प्रातःकालीन दृश्य कॉमन है। इसलिए यह अनोखा लॉज नहीं था। बारह कमरों के लिए मात्र दो समाधान केंद्र थे। संडास व स्नानागार का प्रवेश द्वार एक ही था। जो व्यक्ति इसमें एक बार एडमिशन लेता वह पीएच.डी. कम्पलीट करके ही बाहर आता था। लॉज के भूतल पर भवन स्वामी का बसेरा था और ऊपरी तलों पर किरायेदारों का। एक कमरे में दो व्यक्तियों का ही रहना नियमानुकूल था, परन्तु रामरतन अकेला ही रहता था। किराया दो लोगों का देता था क्योंकि कमरा डबल सीटर था। इसका आशय यह नहीं कि वह पैसेवाला था बल्कि हकीकत यह थी कि उसे सिंगल रूम नहीं मिल पाया था। उसे जल्द से जल्द एक रूममेट की तलाश थी।

एक माह पूर्व ही रामरतन इण्टर पास कर गाँव से शहर आया था। गावों में दूरदर्शन शहरी व शिक्षित समाज का दिव्यदर्शन दशकों से करा रहा था, फिर भी शहरों के रंग-ढंग में रंगने में उसे अधिक कठिनाई हुई। रामरतन एकदम तरोताजा युवा था। उसकी आँखों में 'बड़का साहब' बनने के सपने थे। इसके लिए वह कड़ी से कड़ी मेहनत करने को तैयार था।

गरीब के पास मेहनत के अलावा दूसरी पूँजी ही क्या होती है? गरीब व अमीर की पहचान का आसान तरीका है– "जो मेहनत कर रहा होता है, गरीब होता है। जो आराम कर रहा होता है, अमीर होता है।"

रामरतन के पिता रघ्घू एक किसान थे। इनका वास्तविक नाम रघुनाथ था। किसान को सम्मान देने से सम्मान का महत्व कम हो सकता है, यह सोचकर लोग उसे रघ्घू बुलाते थे। पैसा हो जाने पर लोग कबाड़ी को भी श्रीमान कबाड़िया बुलाते हैं। राम जी की कृपा से पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, मानकर ही पुत्र का नाम रामरतन रखा। परिवार में छोटी बहन सुषमा व माँ श्यामा भी थी। रघ्घू के पास मात्र एक बीघा जमीन थी। किसी तरह साल भर रोटी का इन्तज़ाम हो जाता था। खेती में लागत व आगत में बहुत कम अंतर होता है। रामरतन के पिता मुरलीधर के वंशज थे, अतः कामधेनु विरासत के रूप में द्वार की शोभा बढ़ा रही थी। रामरतन के पिता कामधेनु की सेवा करते और वेतन स्वरुप 8 लीटर दूध सुबह व 8 लीटर शाम को प्राप्त करते थे। इसी के सहारे रामरतन को इलाहाबाद भेजा गया ताकि कोई मज़बूत सहारा मिल सके। रामरतन के लिए यह चुनौती थी की वह दूध का कर्ज कैसे अदा करता है?

कोचिंग में रामरतन की भेंट गोपाल से हुई। गोपाल भी निजी कमरे के अभाव में अपने किसी परिचित के पास परजीवी बनकर रह रहा था। अतः गोपाल ने रामरतन के साथ रहने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। गोपाल की आर्थिक स्थिति कुछ बेहतर थी। पिताजी रेलवे में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी थे। घर में कोई अन्य सदस्य नहीं था।

भोजन के लिए दोनों ने काफी मसक्कत के बाद सबसे सस्ते

टिफिन वाले को खोज निकाला था। 800 रुपये में महीने भर के खाने का इंतज़ाम हो गया। दोपहर व शाम को टिफिन कमरे पर ही आ जाता था। सुबह थोड़ा सा गरीबदाना (चना) खाकर कोचिंग में ज्ञान व क्षुधा के मध्य सामंजस्य स्थापित करते थे।

रात को टिफिन वाला टिफिन देकर चला गया। रामरतन और गोपाल साथ में खाने के लिए बैठे। टिफिन खोलते ही रामरतन की आँखें भर आयीं। उसने घर पर कभी एक साथ सब्जी, दाल, चावल, रोटी और सलाद नहीं खाया था। सुबह दूध-चावल व रात में रोटी-घी-नमक ही मिलता था। 'घी' स्नेहक (ग्रीस) के रूप में रोटी को अंदर ले जाने का साधन मात्र होती थी। दाल व सब्जी कभी-कभी ही बनती थी। खाते-खाते पिता की वह बात याद आ गयी जो उन्होंने उसे बारहवीं में अव्वल आने के बाद कही थी— "बेटवा, हम तौ आपन जिन्दगी भूसा, गोबर के साथ माटी कइ दिहा, लेकिन तू पढ़-लिख के 'बड़का साहब' जरूर बना।"

"बड़का साहब" से रघ्घू का मतलब सिर्फ इतना था कि वह व्यक्ति जिसे धूप में खड़े होकर हल चलाने से नहीं बल्कि छाँव में बैठकर कलम चलाने से पैसा मिलता है।

कोई भी किसान कभी खुशी से किसान नहीं बनना चाहता क्योंकि खेती में हर समय अनिश्चितता बनी रहती है। मेहनत करने के बाद भी फैसला भाग्य के हाथ में होता है।

रामरतन 10+2 स्तर की प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहा था। इसकी जानकारी गाँव के ही एक सज्जन संतोष ने दी थी। संतोष गाँव के ही एक निजी विद्यालय में अध्यापक थे। 4-5 वर्ष पूर्व संतोष भी बड़का साहब बनने की आस लिए शहर आये थे। 3-4 ट्यूशन पढाकर शहर में अपना वजूद कायम किये थे। मेहनती और कुशाग्र होने के कारण तीन बार साक्षात्कार के लिए बुलाये गए। साक्षात्कार-कर्ता इतने ज्ञानी होते थे कि उनके निर्धारित मानको में ज्ञान गौण था। तीनो बार विफल होने के बाद संतोष को लगा हम लोगों की जगह गाँव में ही है। अतः संतोष ने संतोष कर गाँव जाकर ही अगली पीढ़ी को मार्गदर्शन देने का निश्चय किया। इन्होंने ही रामरतन को शहर जाने को प्रेरित किया। कोचिंग में प्रवेश दिलाने के साथ-साथ अपनी प्रतियोगी पुस्तकें, घड़ी, अलार्म घड़ी व कुछ अन्य जरूरी चीजें भी दी थी। रामरतन संतोष जी के बताये रास्ते पर पूरी निष्ठा के साथ चल रहा था। रात को बारह बजे तक पढ़ता और सुबह 4 बजे से उठकर पढ़ने लगता।

गोपाल दस बजे ही सो जाता और सुबह 8 बजे सो कर उठता। ऐसा ही क्रम चलता रहा और एक दिन परीक्षा भी संपन्न हो गयी।

दोनों मित्र परीक्षा देकर शाम को कमरे में पहुंचे। खाना-पीना भूलकर लगातार प्रश्नों का हल ढूँढ़ते रहे। अंत में पाया गया कि रामरतन के 100 प्रश्नों में से 85 व गोपाल के 45 प्रश्न सही हैं। रामरतन ने थोड़ी चिंता जाहिर की, पर गोपाल निश्चिन्त था। सरकार की एक योजनानुसार रेलवे के चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर अपने पुत्र को अपना पद प्रदान कर सकते थे, इसकी विधिवत जानकारी गोपाल को हो चुकी थी।

गाँव में धान की फसल पक चुकी थी और कोहरे, पाले से बचने के लिए किसानों के घर जाने का रास्ता देख रही थी। रघ्घू ने कल से फसल काटने की तैयारी बना रखी थी। रात में ओलावृष्टि ने लगभग आधी फसल नष्ट कर रघ्घू का काम आसान करने की कोशिश की। रघ्घू प्रकृति की ऐसी मित्रता बहुत बार देख चुका था।

खाए खातिर अन्न तौ होइ जाइ, बस खाद-पानी के बदे तनी-मनी मजूरी करे पड़ी" रघ्घू ने श्यामा की घबराहट को देखते हुए कहा। श्यामा को अधिक उपदेश देने की जरूरत रघ्घू को नहीं महसूस हुई क्योंकि उसके पास भी बचपन से ही आँखें थी। श्यामा को भी थोड़ी बहुत मज़दूरी और ज्यादातर भरोसा कामधेनु पर था।

अपनी बची फसल से प्राप्त अन्न को घर में सुरक्षित रखकर दोनों मज़दूरी में लग गए। पुनः कलयुग ने अपने सबल होने का प्रमाण देते हुए निर्बल परिवार पर एक प्रहार किया। कामधेनु अचानक बीमार पड़ गयी। ओझा ने दो-तीन दिन तक झाड़-फूक किया। अंग्रेजी पशु चिकित्सक पाव भर आटे में संतुष्ट न होता। होनी को होने से कौन रोक सकता है? कामधेनु बैकुंठ सिधार गयी।

महीने का आखिरी दिन था। गोपाल को पिता की राजगद्दी सँभालने का अवसर आ गया था। अब वह कमरा छोड़कर प्रशिक्षण हेतु जा रहा था।

"बहुत-बहुत बधाई दोस्त, अब तो साहब बन जाओगे लेकिन अपने दोस्त को भूल मत जाना" कहते हुए रामरतन उसके गले लगा और भावभीनी विदाई दी। गोपाल के जाते ही रामरतन को ख्याल आया की अब नया रूममेट कहाँ मिलेगा? नही मिला तो ... ? सोचते ही, जो आंसू खिड़की से हाथ हिलाकर दोस्त को दे विदाई रहे थे, अचानक भूकम्प के भय से नीचे कूद पड़े थे।

अगली सुबह रामरतन ट्रेन पकड़कर घर को रवाना हुआ। उसे घर की किसी घटना की जानकारी नहीं थी। घर पहुंचते ही उसे ऐसा लगा जैसे घर पर सुनामी ने सब कुछ उजाड़ दिया हो। द्वार पर कामधेनु नहीं थी। माता-पिता की हालत ऐसी

जैसे वर्षों से भोजन नही मिला हो। उसकी आँखों-से आंसू बहने लगे। मन में पश्चाताप कर रहा था कि 'मैं वहाँ आराम से रह रहा था और यहाँ माता-पिता कष्ट झेल रहे थे। अब शहर नहीं जाऊँगा।' रघ्घू ने समझाया कि जो भाग्य में लिखा है उसे कोई टाल नहीं सकता इसलिए वह शहर जाकर पढ़ाई करे। इसके लिये रघ्घु ने खेत अधिया पर उठाने का भी निश्चय कर लिया था। रामरतन नहीं माना। वह भी माता-पिता के साथ दूसरों के खेत काटने जाने लगा।

संतोष जी सुबह-सुबह विद्यालय जाने के लिए निकले। रघु के घर के पास पहुंचकर आवाज़ लगाने ही वाले थे कि देखा रामरतन बरामदे में बैठकर सुषमा को पढ़ा रहा था। संतोष ने कहा– अरे रामरतन! कब आये? घर आये और हमसे मिले भी नहीं। रामरतन नमस्ते करके खड़ा हो गया, पर आगे कुछ बोलता उससे पहले आँसुओं ने वाचालता दिखा दी। संतोष जी स्थिति समझ चुके थे। बोले– कम से कम एक बार मुझसे मिल तो लेते। पता है कि नहीं तुम्हारा बैंक का परिणाम आ गया है। कल ही डाकबाबू ने तुम्हारा पत्र मुझे दिया था। बधाई हो ... अब साक्षात्कार की तैयारी में लग जाओ। रघ्घू और श्यामा को ऐसा लग रहा था जैसे संतोष जी साक्षात्कार पत्र नहीं बल्कि कामधेनु लेकर आए हों।

संतोष को अतीत का कटु अनुभव था। इसलिए इतिहास दोहराना नहीं चाहते थे। विद्यालय से एक दिन का अवकाश व रामरतन को साथ लेकर शहर गए। वहाँ रामरतन को नए कपड़े व जूते दिलाए। कमरे का किराया और खाने का शुल्क जमा किया। रामरतन को यह सब एक स्वप्न की भाँति लग रहा था, पर संतोष ने अपने पिछले अनुभव साझा कर उसे जगाया।

रामरतन साक्षात्कार की तैयारी में लग गया। कुछ दिनों बाद साक्षात्कार हो गया। अपना सारा सामान लेकर रामरतन घर आ गया।

घर पर रहते हुए एक महीना बीत गया। एक दिन संतोष जी रामरतन के घर पर बैठे थे तभी डाकिया आया और एक पत्र देकर चला गया। सभी लोग उत्सुकता के साथ पत्र की ओर देख रहे थे। संतोष जी ने पत्र का अगला सिरा खोला और अन्तर्निहित पत्र को बाहर निकाला।

संतोष के मुख पर लिखे भाव को अनपढ़ रघ्घू ने पढ़ लिया और समझ गया की उसका रामरतन आज एक रतन बन गया है। संतोष को भी विश्वास हो गया कि छोटके लोगों का 'बड़का साहब' बनना मुश्किल जरूर है पर नामुमकिन नहीं।

***

उभरती महामारी

मोहन पुरी

आँगन में पसीने से तरबतर बंडी को उतारते हुए रामलाल ने तीखी नजरों से आँगन में पड़ी खाट की ओर देखा तो 'झल्ला सा गया— हम हैं ना इन लाट-साहब के नौकर, जो रात-दिन इनकी चाकरी में लगे हुए हैं। रामलाल बड़बड़ाते हुए पंडेरी के पास जाकर— एक साथ दो लोटा पानी गटगटाकर पी गया। लेकिन शांति फिर भी उसके चेहरे से कोसों दूर थी। वह वापस ओसारे की तरफ बढ़ने लगा— आज फैसला हो ही जाए... आखिर कब तक मुफ्त की रोटियाँ इन लाट-साहब से तुड़वाते रहेंगे। पढ़ाई पूरे हुए तीन साल हो गये पर ये अब तक आँगन को ही रौंदे जा रहे हैं। अरे मैं कहता कोई काम क्यों नहीं कर लेता।

खाट पर औंधा पड़ा यह बेरोजगार नवयुवक अपने बाप की फब्तियों को बिना सिर उठाए सुनता जा रहा है, आखिर करे भी तो क्या.. आँसू बहाने के अलावा बचा ही क्या उसके पास...।

गले की खखार को बगल में थूकते हुए रामलाल गुस्से से अब और आग-बबुला हो गया— अरे माथा खाट से गाड़ लेने से क्या होगा? अरे इस हरामी ने तो मुझे बरबाद करके रख दिया है; फिर सही कहता था पंडत उस समय तो म्हारी अक्कल घास खाणे गयी थी जो उसकी बात ना मान कर इस सांड को कर्जे से पढ़ाया...। रामलाल का पारा सातवें आसमान की तरफ बढ़ने लगा था आज उसके मन में जो आ रहा था, वह बिना सोचे समझे बोले जा रहा था। तेज-तेज आवाज सुनकर जानकी बिना हाँथ धोये (जो गोबर से सने हुये थे) तेजी से घर के पिछवाड़े से भागते हुये आँगन में आ गई। बनावटी गुस्सा करते हुए अपने पति पर शब्द-प्रहार करने में जुट गई— अरे क्यों खाये जा रहे हो इसे, क्या घर में दो पल भी शांति नहीं रहने देंगे? अरे बड़े आये डाँटने वाले ... कभी हल का मूँठ भी इसे पकड़ाया जो चिल्लाए जा रहे हैं जब कोई काम धंधा सिखाया ही नहीं, हमेशा किताबें ही हाथ में दी तो अब क्यों हम आशा करें कि यह हमें कमाकर खिलाए?

मुझे क्या पता था कि यह गुल खिलाने वाला है.. सारे गाँव में किरकिरी हो रही है, घर के बाहर निकलने लायक नहीं छोड़ा इस साल्ले ने, रामलाल के मुँह से गाली निकलते-निकलते रह गई। उसका गला भर्रा सा गया। हाथ में बडी लेते हुए हल को उठाकर धीरे से चलने लगा तो जानकी ने टोका— अरे खाना तो खाकर जाईये...रामलाल ने झिडकते हुए बिना मुडे ही कहा— खाना तो इन बाबूजी को खिलाओ, हम मजदूरों के लिये तो खेत पर ही भेज देना। इस भारी आवाज के साथ वह घर के चौखट को लांघते हुए खेत की ओर बड़बड़ाते हुए चला गया। जानकी के सामने अजीब स्थिति थी आखिर वह करती भी तो क्या— पति का चिड़चिड़ाना भी तो एक हद तक सही था और बेटे को औंधे मुँह गीली खाट करते हुए भी नहीं देख सकती। कुछ देर खड़े रहने के बाद खाट पर बैठते हुए बड़े प्यार से उस मुर्दे के समान पड़े हुए हुए नौजवान की तरफ हाथ बढ़ाने लगी, तभी उसे याद आया उसने गोबर के सने हुए हाँथ धोये ही नहीं। जल्दी से पास पड़ी बाल्टी में हाथ धोकर वापस उस खाट के पास आई .. खाट पर पड़े नवयुवक की सिसकियाँ अब तक बाहर आने लगी थीं, आँसू की लड़ी सावन की झड़ी के समान बरसे जा रही थी। उठ लखन चल खाना ठंडा होने वाला है। जानकी ने उसे दुलारते हुए उठाने का प्रयास किया परंतु लखन की सिसकियों का अंत दिखाई नहीं दे रहा था। संजू उसे बार-बार उठाने का प्रयास कर रही थी परंतु लखन - औंधे से सीधे होने का नाम नहीं ले रहा था। अब तक संजू की आँखों में भी आँसू छलक आए थे.. — आँसू पोछते हुए बोली— बेचारे उनकी भी क्या गलती रे, तू तो देखता ही है एक पल भी नहीं जपते, दिनभर कड़ी धूप में भी... वाक्य पूरा नहीं कर पाई थी। संजू - नानकी मुँह चढ़ाकर बोली, चल अब जल्दी से उठ जा बाप है तेरा, कुछ बोले तो सुनना पड़ेगा तुझे; आखिर दूसरा तो कोई तुम्हें गाली नहीं बक रहा है। थोड़ी देर रुककर बोली। मैंने कितनी बार उन्हें समझाया— नौकरी जब लगनी हो तो लग जाएगी, इस घर में मातम मत मचाओ। क्या हमारे पास जमीन नहीं है जो नौकरी की ही आस करे? पर यह मड़ीखाया रोज घर में...।

चल अब हाथ— मुँह धोकर खाना खा ले। संजू - रानी भर्राये गले से बेटे को खाट से खींचने लगी। बड़ी मशक्कत से लखन खाट से उठा परंतु उसके कदम आगे की तरफ बढ़ ही नहीं पा रहे थे उसे लग रहा था कि वह अभी धड़ाम से गिर जाएगा।

माँ का मन रखने के लिये लखन ने हाँथ-मुँह धोकर चौकी के पास बैठने का प्रयास किया, तब तक संजू अपने पति के

लिए खाना रख चुकी थी चूँकि 12 बज चुके थे सो माँ ने लखन के सामने खाने के सारे समान रख झट से खेत की राह पकड़ी। मां के जाने के बाद लखन के मुँह में एक कौर भी नहीं जा रहा था आधी रोटी पूरी भी ना कि होगी की उठा और हाँथ धोकर ओसारे में पड़ी खाट पर धड़ाम से जाकर वापस गिर पड़ा।

आज उसके पिता के व्यवहार ने लखन को अंदर तक हिला दिया था– बाबूजी ने तो आज तक गुस्सा नहीं किया, हमेशा वे लखन का हौंसला ही बढ़ाते रहे थे फिर अचानक ही बाबूजी को ये सब क्या हो गया। लखन की पलकें एक बार फिर गीली होने लगी। बीते दिनों के तमाम घटनाएं उसके मस्तिक में चक्कर काटने लगी थी।

जब मैंने बारहवीं में प्रथम स्थान प्राप्त किया, तो इसी आँगन में मुझको गाँव के सरपंच ने कहा था कि – रामलाल यो गाँव को हीरो है हीरो – अरे आरट (आर्ट) लिया तो क्या हुआ देखना एक दिन यह कलेटर (कलेक्टर) बनेगा थारो छोरो। सरपंच के प्रत्येक शब्द के साथ बाबूजी की खुशियाँ छिपती नही बनती थी। सारे गाँव की वाह-वाही से बाबूजी का सीना तन सा गया था, यह जानते हुए भी कि बनारस पढ़ाने की उनकी हैसीयत नहीं है फिर भी उस दिन वह बेटे के खातिर कुछ भी करने को तैयार थे। उस दिन बाबूजी ने पैसे की समस्या जब सरपंच को बतायी तो वह भी झट से देने के लिए तैयार हो गया। आखिर लखन गाँव की शान जो था और बनारस के बी.ए. की प्रवेश परीक्षा पास करना ठठ्ठेबाजी का काम नहीं है, अरे मैंने तो आज तक भोपाल के आगे देखा भी नहीं साहब... सरपंच ने बाबूजी के हौंसला बुलंद करते हुए कहा था– अरे थारो छोरो काशीजी में पढ़ेगो, काशी का पूरा पंडा बनकर गाँव का नाम रोशन करेगो। वास्तव में, उस दिन सरपंच की चौपाल पर जमे सभी लोगों के चेहरे पर गर्वोक्ति की रेखाएं अपने आप चमकने लगी थीं।

बाबूजी खर्च से ज्यादा ही हमेशा लखन को रुपये भेजते। कुछ कहने पर कहते – अरे परदेस में दो पैसे ज्यादा ही अच्छे रहते हे। फिर मुझे तुम पर पूरा भरोसा है कभी भी फालतू नहीं गँवाओगे। आखिर एक ना एक दिन सूत-समेत पैसे वापस आ ही जाएंगे, है ना जानकी... कहते हुए लखन की माँ की तरफ आशान्वित नजरों से देखकर हल्के से मुस्कान बिखेरते, मन में जाने क्या सोच-सोचकर खुश होते रहते।

समय बीतता गया लखन के प्रथम वर्ष का रिजल्ट आया। लखन से ज्यादा गाँव भर को इसका इन्तजार था। आखिर उनके गाँव का लड़का पढ़ने जो विदेश (बनारस) गया था, उमीद के मुताबिक लखन प्रथम श्रेणी से पास हुआ। बाबूजी को इतनी शांति मिली मानो सूखी फसलों पर इंद्र राजा ने मेहरबान होकर उनको फिर से हरा-भरा कर दिया हो। गाँव में लखन की वाह-वाही के चर्चे जगह-जगह होते, कोई कहता-कितना समझदार बच्चा है अपने बाप की मेहनत को गँवारा ना जाने देता। दिन-रात मेहनत करके प्रथम श्रेणी में पास हो गया, एक मेरा गोलू है इसी के साथ था अभी तक बारहवीं भी पास नहीं कर पाया। भाई औलाद दे तो रामलाल की औलाद जैसी वरना जिन्दगी भर अपना सिर पीटना है। लखन को आज भी अपने प्रथम श्रेणी में पास होने का दिन याद है। छुट्टियों में वह भी घर ही था, गाँव की सोरमी-काकी तक ने उससे सबके के बारे में पूछा था– कारे लखनिया बेटा पास हो गया? बेटा खूब पढ़ो और कलेटर बण के गाँव का नाम रोशन करो...। बेचारी सोरमी काकी को क्या पता था कि कलेक्टर बनने के लिए क्या-क्या पापड़ बेलने पड़ते है। परंतु लखन की मेहनत देखकर गाँव वालों को इससे कम की उम्मीद भी नहीं थी। खाट पर पड़े-पड़े लखन की निगाहें अचानक गारे की दीवार पर टंगी तस्वीर पर पड़ी। तस्वीर में वह उसकी माँ उसकी बड़ी बहन और बाबूजी थे। उसके सामने फिल्म की रील की तरह दृश्य एक बार फिर घूमने लगे...।

इसी आँगन की खाट पर उस दिन लडके के बाप ने उसकी बहन का रिश्ता इसलिये ठुकरा दिया था क्योंकि बाबूजी मारूती 800 देने में सक्षम नहीं थे। फिर भी बाबूजी ने हिम्मत करके उन्हें मोटरसाईकिल पर राजी करने का प्रयास किया था। परंतु लड़के का बाप चाय का कप रखते हुए तन्नाते हुए बोला था – क्या जी... हमें सौदागर या दुकानदार समझ रखा है। जो ये पसंद ना आए तो ये ले लो करके समझा रहे हैं, अगर हैसियत नहीं थी तो हमारा समय खोटा क्यौं किया।

तब तक बाबूजी को भी ताव आ गया था – अरे जाओ तुम्हारे जैसे कितने ही लालची देखे, तुम्हारा लड़का क्लर्क क्या हो गया कि सर आसमान पर उठाए हैं। जब हमारे दिन फिरेंगे तो दर्शन के लिये भी तरसोगे। बाबूजी ने इन अंतिम पंक्तियों पर आवश्यकता से ज्यादा जोर देकर लड़के वालों को चलता किया था, शायद इसी उम्मीद पर कि मैं एक दिन जरूर उनकी बातों पर खरा उतरूंगा।

खाट पर पड़े लखन के मन में पुराने यादों की रील घूम ही रही थी कि दरवाजे के पास लाठी टेकते हुए कोई आता दिखाई दिया लखन उठ बैठा ..आँखें मसलते हुए देखा तो वे सरपंचजी थे, हालाँकि वे अब सरपंच नहीं रहे लेकिन अब भी वे गाँव में सरपंच के नाम से ही जाने जाते थे।

रामलाल! – ओ रामलाल! जरा घर से बाहर तो निकल

भाई ... सरपंच ने दरवाजे के चौकट से आवाज लगाई। वे तो घर पर तो नहीं हैं लखन ने खाट से उठते हुए कहा। 'नहीं हैं सरपंच द्वारा ये शब्द दुहराये जाने पर उनके माथे की आकृतियाँ स्पष्ट बदलने लगीं थी। अरे एक हप्ते की मुहलत माँगी थी..तीन हप्ते हो गए... भई इस तरह तो छुपकर किसी के पैसे नहीं डकारे जा सकते। फिर मैंने तो हमेशा उसकी भलमनसी के कारण उसकी मदद की है। आगे उसकी मर्जी ....।

सरपंच मुड़कर जाने लगा तभी उसे जैसे कुछ भूला याद आया। अरे लखन, कुछ काम-धंधा कर रहे हो कि अभी ऐसे ही हो। लखन के कानों में ये शब्द बंदूक की गोली के समान गुंजे। परंतु उसकी जबान हिलने की बजाय सिर नीचे झुक गया। देखों बेटा बड़ी नौकरी के चक्कर में मत पड़ो बाप का भार कंधे पर लो... देखो छोटी-मोटी नौकरी ही ले लो चाहे चपरासी ही क्यों ना हो। अन्य लोगों की तरह सरपंच भी लखन को सलाह देकर चलता बना। सरपंच के जाने के बाद लखन के सामने फिर दृश्य घूमने लगे...। वह सोचने लगा - सरपंच ही थे ना जो मुझे कलेक्टर बनाने के लिये उतावले हो रहे थे आज यही मुझे चपरासी बनने के लिये सलाह दे रहे हैं। लखन का मस्तिष्क अचानक से भारी-भारी होने लगा उसे याद आया, ढाई महीने पहले ही उसकी बड़ी बहन की शादी हुई है। बाबूजी ने सरपंच से सारा खर्चा लेकर बहन को जैसे-तैसे विदा किया। आखिर उनके पास और कोई चारा भी तो नहीं था।

अब उन्हें जान से प्यारा खेत बेचकर सरपंच का रुपया उसी महीने चुकाना था, क्योकिं यही कोल हुई थी। लखन को याद आता है – कैसे खेत की रजिस्ट्री कराते समय उनके हाथ काँप रहे थे। आँखों में आँसू के एक पतली परत छा गयी थी। इतना दुख तो बाबूजी को उस समय भी नहीं हुआ था जब उन्होंने मेरे पढ़ाई के खर्च के लिये खेत बेचा था। उस दिन वे कहते थे – भगवान ने चाहा तो ऐसे ढेरों खेत बसा लूंगा। लेकिन जब एम.ए. होने पूरी के बाद भी जब मेरी नौकरी नहीं लगी तो बाबूजी की हृदय की उमंग धीरे-धीरे कम होने लगी। बहन की शादी का खर्च पाँच लाख आया परंतु खेत साढ़े चार-लाख में ही बिक सका, पचास हजार सरपंच के अभी और उधार हैं। इन पैसों के वजह से ही आज सरपंच उसके बाबूजी को उसके सामने सुनाकर चला गया था। लेकिन आखिर वह करे तो क्या...?

लखन को लेटे-लेटे पलंग पर चार बज गये, अभी तक पिछली बातों का अम्बार उसके माथे को रोज की तरह भारी कर चुका था। पलंग से उठकर उसने बाल्टी से पानी लेकर मुँह धोया और श्याम इन्टरनेट की तरफ जाने के लिए तैयार होने लगा।

रोज से, आज दुकान पर ज्यादा भीड़ थी। लखन ने दुकान में जाकर आवाज लगाई – अरे श्याम आज इतनी दुकान में भीड़ क्यों है ... कम्प्यूटर पर उँगुलियों को पटकते हुए बिना सिर उठाये ही श्याम बोला – हाँ आज राज-सेवाकर्मी चयन की आखरी तारीख है ना, तुम्हें भी भरना है क्या ... ? मुझे मैं मैं मैं... लखन को लड़खड़ाते देख – अरे भाई एम.ए. करने वाला चपरासी का फार्म क्यों भरेगा? यह कहकर श्याम पास में बैठे लड़के से डाटा भरवाने लगा। लखन उदास मन से श्याम की दुकान से उतरने लगा तभी किसी ने पीछे से आवाज दी– अरे श्याम बाबू रेलवे का रिजल्ट आया कि नहीं? लखन ने सिर हिलाकर ना कह दिया। वह लड़का आगे बढ़ गया... लखन आगे चुपचाप चल रहा था तभी डाक्युमेन्ट लेकर विष्णु आता दिखाई दिया। गाँव मे यही लखन का सबसे खास मित्र है।

अरे भई बिना बताए ही फारम भर आए, विष्णु ने आँख मटकाते हुए कहा। लखन ने उदास मन से कहा– नहीं।

अरे भाई साला पुलिस का रिजल्ट भी नहीं आ रहा है। सुना है सरकार का तख्ता पलटने से परीक्षा दुबारा होगी।

लखन के कानों को जैसे विश्वास नहीं हुआ– 'क्या'? हाँ यार विष्णु ने हाँथ बढ़ाते हुए कहा। और वह जो जनपद पंचायत के लिये हम लोगों ने इन्टरव्यू दिया था ना उस पर तो गाँव का सरपंच के बड़े लड़के का चयन हो गया।

लखन को तो इस बार सच में यकीन नहीं हुआ...।

यह कैसे हो सकता है, वह तो बारहवीं भी थर्ड डिवीजन से पास हुआ है।

हाँ गुरु, पता नहीं पर यह तो सच है। चल अब चलता हूँ ... दोस्त बड़े मुश्किल से ढाई सौ जुगाड़ा है फारम भरने के लिये, यह कहते हुए विष्णु, श्याम इन्टरनेट की ओर छलांगे लगाने लगा। विष्णु तो चला गया पर लखन के जैसे पाँव जमीन से चिपक गए हों। वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा पा रहा था। यह कैसे हो सकता है? जबकि मैंने इतनी अच्छी तरह से इन्टरव्यू दिया था। यह सरपंच का लड़का जो तम्बाकू मुँह में खोंसकर गया था, वह भी मेरे सामने.....। लखन के कान जोर से बजने लगे थे, वे सैकड़ों शब्द उसे एक साथ सुनाई देने लगे जो उसने विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों से ग्रहण किये थे– मेहनत, ईमानदारी, वफादारी, दया, विनम्रता, सहनशीलता, सहजता, परोपकारी, साहसी, परिश्रमी... । परंतु लखन को आज ये सारे शब्द महज ही खोखले लग रहे थे। वह सोचते हुए जा रहा था कि क्यों ना उसके कानों में भी बेईमानी, लालची, धोखेबाजी, बेज्जती, चापलूसी जैसे शब्द सुनाई दे ताकि जीवन

में कुछ काम तो आ सके। तभी उसे याद आया कि इन शब्दों का महत्व तभी बढ़ सकता है जब 'जेब गर्म हो। उसकी जेब का तो यह हाल है कि उसके पास फार्म भरने के लिये भी पैसे नहीं हैं। उसे चलते हुए बार-बार बाबूजी का सुबह वाला चेहरा याद आता तो पैर ठिठक जाते।

पर अन्य रास्तों के अभाव में वह सिर झुकाए वह वापस घर की तरफ बढ़ रहा है। जहाँ, शाम को उसकी माँ दुखी बाप को खाने को जबरन मजबूर करेगी, यह जानते हुए भी कि खाना उनके पेट में नहीं उतरेगा और गलती से भी बाबूजी को यह पता चल गया कि सरपंच घर पर रुपये माँगने आया था तो शायद खाने के लिये उनका मुँह भी ना खुल सकेगा। मेरे बाबूजी मेरी तरफ क्रोध से देखेंगे और थाली को जोर-से एक लात मार कर बरामदे की तरफ जाकर निहारने लगेंगे और माँ बेचारी इसी दुविधा में खा ही नहीं पाएंगी कि ना बाबूजी ने कुछ खाया और ना ही मैंने। इसी सोच के साथ लखन घर की तरफ बढ़ा जा रहा था— बोझिल मन और अवसाद-ग्रस्तता के साथ।

***

गजल

सत्यम भारती की गजलें

1.

बिन मतलब के दर पे बुलाता कौन है?
जो नजर से गिरा उसे उठाता कौन है?

मुतमइन हैं सारे ईधर अपने ही आदर्शों में,
अब बुजुर्गों के आगे सर झुकाता कौन है?

मेधा की स्याही से लिखी गयी बातें बड़ी,
उन समस्याओं के समुंदर से टकराता कौन है?

बन न सके पथप्रदर्शक, पथभ्रष्टक भी मत बन,
उम्मीदों के दरख़्तों से नीचे गिराता कौन है ?
वो एक तूफाँ थी, उत्सव मना कर चली गयी,
उम्र भर यूं ही साथ निभाता कौन है?

मेरी खुशियों में शामिल है चाँद-सूरज कई,
फिर मेरे गम में मुस्कुराता कौन है?

चुनाव जीतने का नुस्ख़ा निकालो कोई दूजा,
बात-बात पर बस्ती जलाता कौन है?

2.

"वक्त के बेलिबास मन्जर को देखेंगे,
उनके हक पे उतरते खन्जर को देखेंगे।

दफ्न नहीं होगें अरमान, चारदीवारी में अब,
रिवायतों के काफिर उन कलंदर को देखेंगे।

'खुदकुशी' निदान नहीं किसी समस्या की,
विफलता की सबब इन समुंदर को देखेंगे।

तख़्त पे कितने आये और कितने चले गये,
अबकी बार इस सियाह सिकंदर को देखेंगे।

दूसरों के ऊपर इल्जाम धरने से पहले,
अपने अंदर के जर्द जलंधर को देखेंगे।"

***

प्रो. देवशंकर नवीन की कविताएं

1.

माँ की कहानी

इस कोरे कागज पर
किसी श्रान्त क्लान्त आँखों के आँसू की तरह
उग आए शब्दों को आप कोई कथा कहोगे?
या कह डालेंगे मेरे व्यथा के गीत?

माँ के गर्भ, दादी की गोद, पिता के हथफूले से
सास का लिहाज, ससुर के परदा, पति के आदेश तक की यात्रा से मेरी माँ ने
कैसे ध्वस्त किया होगा अपने स्वप्न महल को
कैसे मुझे टीला बनाने में खुद को खाई कर ली होगी
अपने बारे में सोचने की कामनाएँ कैसे भूल गई होगी माँ
मुझमें एक-एक कोपलें फूटते हुए देखने के लिए
किस कदर निर्निमेश निहारती और जागती रही होगी माँ---
मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं

ज्ञात है मात्र इतना कि
गाढ़ी नींद में सोई हुई सन्तान के मुखमण्डल पर मुस्कान की कोई रेखा
सुललित लगती है माँ को
माँ को सुखकर लगती है
सन्तान के बलशाली और वैभवशाली होने की कल्पना
उसे भाती नहीं कभी अपनी प्रशंसा, अपना परिचय
वह अपने पति की पत्नी और सन्तानों की जननी होने के तथ्य को ही
अपना परिचय समझती है।

एक जीवन का अद्‌भुत बिता कर
आज तक मैं यही जान पाया कि
गड़ा-गड़ी का खेल कब के हवा हो चुका माँ के जीवन से
अब थक जाने पर जम्हाई-अंगराई की तरह याद रखती है माँ
ससुराल की चूल्हा-चक्की
माँ की स्मरण शक्ति विलक्षण है
के.जी. क्लास के बच्चों की तरह राइम्स रटती हुई माँ
याद रखती है
सास की भक्ति, ससुर की सेवा
पतिदेव की पूजा, सन्तानों का लालन-पालन
माँ पल-पल अस्वस्थ रहती है।
माँ कभी खुद को अस्वस्थ नहीं कहती है।
खुद को धूपबत्ती की तरह जलाती हूँ माँ कहती है—
बेटी से पत्नी और पत्नी से माँ बनने की सार्थकता
तुम नहीं समझोगे बेटे!

2.

आन वतन की

आग लगी तुम सावधान हो/मुल्क का जलवा देखे जाओ
लोग मरे घर जले किसी का/अपनी रोटी सेंके जाओ
कुत्ते यूँ ही भौंक-भौंक कर/थक कर चुप हो जाएँगे
बीच-बीच में चुप रखना हो/तिनका-टुकड़ी फेंके जाओ
मुल्को-वतन की आन लुटे तो/हो-हल्ला नाकाफी है।
इसी लूट में तुम भी भैया/अपनी कुर्सी छेके जाओ
तन से, धन से, दिल से जो भी/कुर्बानी दे देता है।
उस मूरख के नाम हँसो/और थूक बहुत भी फेंके जाओ

3.

रोक लेना उनका मरना है

दाता दीनानाथ!
तुम कहीं हो?
यदि हो, तो ऐसा करना हम बेपनाहों के लिए –
हमारे मुल्क के मन्त्री, प्रधानमन्त्री बदलने न देना
बदल भी जाए यदि।
उनका बदलना रोक न पाओ तुम
तो दुहाई परवरदिगार की
उन्हें मरने न देना!
उनकी मृत्यु रोक सकते हो तुम –
ऐसा सुन रखा है हमने
उनकी मृत्यु हम गरीबों के लिए बड़ा अमंगल होगा प्रभु!
दर्जनों एकड़ जमीन फिर घिर जाएगी उनकी समाधि में
और, ऐसा ही होता रहा।
तो कहाँ बैठेगी मेरी महरी चूल्हा-चक्की लेकर
कहाँ झुकेगा देश का नौनिहाल घुटनों के बल

कहाँ लगेगी उनके बदन पर मुल्क की मिट्टी
और फिर बड़ा होकर कैसे कहेगा वह
कि वतन की मिट्टी से पुष्ट हुआ है मेरा शरीर?

4.

लाज

है पूरे साल सास और ननद से भली-भाँति पिट कर
वापस आ पहुँची मेरी छोटी बहन, नूना!
नूना, केवल मेरी बहन नहीं।
एक बेरोजगार पति की पत्नी भी है।
दो बेटों की माँ भी है।
एक शिक्षक श्वसुर की वधू भी है।
यूँ तीन वर्ष पूर्व–
नूना एक लड़की थी
दुनिया को अपनी आँखों से देखती थी
नारी शोषण पर मुझसे बातें करती थी
शोषित नारियों की निष्क्रियता पर
उन्हें कोसती थी।

पड़ोस में किसी के घर बेटी पैदा हो–
और उस घर में उदासी छा जाए–
तो वहाँ एक लेक्चर दे आती थी नूना नूना
अब 'ससुराल भोग' कर आई है।
अपनी यातनाएँ श्वसुर को नहीं कह पाई
पति को कहे तो पारिवारिक विग्रह होगा
स्वयं प्रतिवाद करे तो पीहर की निन्दा होगी
नूना को अपने अशक्य भाई की प्रतिष्ठा भी
प्यारी है।

सारा कुछ उसने अपनी देह में भोग लिया–
अपनों से मिले सलाखों के निशान
घूँघट में संजो लिया।
सास, माँ का ही तो रूप होती है।
गौना के समय माँ ने कहा था–
बेटी! बाबा की लाज रखना...
नूना ने बाबा की लाज रख ली
कई बार आजिजी से सोचा–
समाज मनुष्य की प्रगति का सबसे बड़ा बाधक होता है।
मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होकर–
कुछ भी नहीं कर सकता
लेकिन,

नूना असामाजिक नहीं होगी
उसे गौना के समय बाप ने सिखाया था–
बेटी! शीलवती बेटी के पैर दो ही बार उठते हैं।
एक ससुराल जाते समय।
दूसरा स्वर्ग जाते समय
नूना अब 'ससुराल भोग' कर पीहर आ गई है।
बाबा की लाज उसने रखी या नहीं–
उसे पता नहीं
यातनाएँ तो उसने भोग ली
पर बाप की शिक्षा के अनुसार तो आत्महत्या
करनी पड़ती...

अब पूछती है नूना
अपने संघर्ष-पुरुष भाई से
भैया!
आत्महत्या करना कायरता नहीं है?

***

हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।

- मैथिलीशरण गुप्त

कविता

सुशांत शर्मा की कविताएँ

1.

उस शाम
राधा बहुत उदास थी
नीलाम्बर के आंचल का कोर
भींग गया था उसके आंसुओं से
वृषभानदुलारी चिंता में पीली हुई जा रही थी
श्याम हरित द्युति बदल गई थी
एक मरणासन्न पीलेपन में
कनुप्रिया की स्मृति में
दीप्त हो रही थीं वे छवियाँ
जब छछिया भरि छांछ पर नाच नाचा करते थे कृष्ण
जब उसकी वेणी में
गूँथते थे जापाकुसुम की कलियाँ
जब कदंब की डाल पर बैठ
बजाते थे बंशी और
राधा को सुन पड़ता था "प्रिये चारुशीले!"
नीलाम्बर धारिणी को याद आया वह क्षण
जब रक्तिम टेसू के पुष्प का रस निचोड़
लगा रहे थे कारे कन्हाई उसकी एड़ी में महावर
ब्रजगांव में सबने जान लिया था
राधा की एड़ी और कृष्ण की तलहथी का रंग
एक सा क्यों है?
और उस दृश्य को याद कर तो
शर्म से लला उठी राधा
कठोर हो गए उसके कुचाग्र
होठों ने महसूस किया रक्त की बढ़ चली मात्रा को
जंघाएँ कस गईं अचानक
और चिहुँक उठी वह
जैसे की उस दिन
जब तालाब से बाहर नंगा देखा था उसे
योगेश्वर कृष्ण ने।
राधा प्रकृतस्थ हुई
उसे नही थी आपत्ति कृष्ण के जाने पर
कंस के विनाश और देवकी के उद्धार पर
लेकिन वह जानती थी
अब कृष्ण का लौटना नहीं होगा
अब नहीं रह जाएंगे वे
ब्रज गांव के छोरे
माखनचोर !!
बाँसुरीवाले !!
वह् जानती थी
नहीं लौटेंगे कनु इस ओर
क्योंकि
उसके पास अब कुछ नहीं बचा है
जिसे कृष्ण ने न देखा, चखा और भोगा हो
दही से देहि तक
सबकुछ कर चुकी है वह अर्पण।
हर शाम वह कृष्ण से
मिली है कुछ न कुछ भेंट देकर
कभी दही तो कभी देहि।
सुना है जब कृष्ण जा रहे थे
ब्रजरोदसी को छोड़कर
तब शाम हो रही थी
राधा के घर से आवाज आ रही थी
मथानी के चलने की
पता नहीं क्या मथा जा रहा था
दही या देहि।

2.

आधी रात को
जब दम्म साधे सत्ती ने
अपना हाथ ले जाकर रख दिया
तिरलोचन की बाईं जांघ पर
बिखियाये तिरलोचन को लगा
बिच्छू मार गया हो जैसे
झटक कर पकड़ लिया सत्ती का हाथ
वही रोक दिया उसे
सत्ती के साथ यह पहली बार नहीं था
कई बार पहले भी उन्मन तिरलोचन रोक चुका है उसे
सत्ती के लिए तिरलोचन की देह से
अपनी देह को मिलाना कई अर्थ रखता था
जैसे कभी वह चाहती थी तिरलोचन को
अपने जाये की तरह गोद मे सुलाकर चूमना
कभी चाहती थी उसे बाँहों में भरकर

पूरी रात जागते हुए सोना
कभी उसके केशों में हाथ फिराते हो जाना निढाल
कभी उसकी जंघाओं से अपने कठोर कुच लगाकर
यूँ ही पड़े रहना संज्ञाशून्य
कभी उसके होंठ, आँख, चिबुकि, गाल को छूकर देखना
इस ख़्याल से भरकर कि
कल को अगर हो गई अन्धी
तो कैसे पहचानूंगी छूकर तिरलोचन को।
कभी वह् चाहती उसे चूमना नखशिख
और इस बहाने उस परम सत्ता वाले सिरजनहार को
धन्यवाद देना कि उसने एक उत्कृष्ट कृति रची है।
कभी कभी वह सीधे चाहती समागम और संभोग
ऐसे में वह भूमिका नहीं बाँधती
वरन बेहिचक जांघ से ऊपर ले जाती हाथ
और होठों में भर लेती
तिरलोचन के होठ।
तिरलोचन के लिए इन सारी बातों का मतलब था एक
उसे लगता सत्ती को प्रिय है बस उसकी देह
दरअसल देह के जितने मायने तिरलोचन जानता था
उतने की ही अपेक्षा रखता था सत्ती से भी
पर सत्ती ने अपनी देह पर जब जब
तिरलोचन की देह को महसूसा था
जितने जितने अर्थों में
उतने ही सन्दर्भ ढूंढती थी
तिरलोचन की देह में।
तिरलोचन जब जब रूठता, गुस्सा होता
ऐसे ही पकड़ लेता सत्ती के हाथ
रोक देता उसे देह की संसर्ग से
लेकिन काम को जीतने के लिए
खोलना ही पड़ता है तीसरा नेत्र
बाकी जब बन्द रहती तिरलोचन की
तीसरी आंख
मग्न रहता था अपनी समाधि में
जिसमें सुना ही वीर्यस्खलन जैसा सुख मिलता है
तो रौंद डालता सत्ती की देह को
जब काटता उसके होंठ तो दांतो में ही समेट लेता
अपना सारा वजूद जैसे
वह् सिमट जाता था
अपने हाथ भर में
मसलते समय सत्ती के कुचाग्र।
एक दिन अचानक
तिरलोचन ने त्याग दिया सत्ती को
माँ के समान पूजनीया कहकर।

3. उड़ चल मैना

उड़ चल मैना देस बेगाना
चल चल परदेश बेगाना
सबकुछ बा इहवां बिराना
तिनका तिनका दाना दाना।
उड़ चल मैंना..

सागर के तीरे तीरे
पुरवा पर धीरे धीरे
देखिहे कौनो काँटा ना
सपना के पंखिया चीरे
चल उहवाँ देखल जाई
सपना अपना मनमाना
उड़ चल मैना..

ना जहवाँ राजा रानी
ना जहवाँ सोना चानी
जियला बदे जहवाँ नाहीं
भरबे चलनी में पानी
जवना धरती पर खाली
नेहिये के ताना बाना
उड़ चल मैना...

ना जानी कौन दिसा से
ना जानी केतना दूरी
पंखिया के एक भरोसा
अउरी इच्छा के धूरी
अपना खोजला के भरोसे
ना कौनो पता ठेकाना
उड़ चल मैना...

***

कविता

दीप्ती शर्मा की कविताएं

1.

प्रेम की चिट्ठियों!
तुम्हारे शब्द
मेरे रक्त का वेग हैं
जो मेरे भीतर
जन्म-जन्मातर तक
प्रेवाहित होते रहेंगे
मष्तिष्क की लकीरों से
आँखों की झुलरयों तक का सफर
तय किया है साथ में हमनें

चिट्ठियां पुरानी नहीं होती
वह अहसासों में बसती है
वर्ष बीत जाते हैं बस
बीते वर्षों में
कुछ यादों ने
कँपते हाथों में
जान डाल दी
देखो साँस चल रही
बोल नहीं निकले तो क्या
वेंटिलेटर पर हूँ
चिट्ठियां थामें

ये क्या!
बँधी मुट्ठियाँ खुल गयी
जीवन के अंतिम वक्त में
चिट्ठियां छूट रही
साँस टूट रही
मेरी आँखें बंद हो रही
तुम्हारे अक्षर धुल रहे
अब लगता है, पुरानी हो जाएगीं चिट्ठियां
सुनो! रोना मत
मेरे जाने के बाद
आखिरी चिट्ठी में
तुम रोये थे
कह गये थे रोना मत
मैं रो नहीं रही
समय अब मेरा नहीं रहा ना
क्योंकि एक समय बीत जाने पर
मिट जाता है भूतकाल
और देखा जाता है भविष्य
प्रेम
चिट्ठियां
यादें
पुराने समय की बात हो चली
अब तो डाकिया भी नहीं आता।

2.

बाजार!
एक मान्यता, एक दिखावा
जहाँ होड़ लगी
नीचा, ऊँचा दिखाने की,

दूर वहाँ जंगल में,
शव काटता एक आदमी
अपनी मान्यताओं से मजबूर
उसके सपने बादलों में दूर
जाकर छिप जाते हैं,
वो मनपा है जो बेपगार
शव काट
नदी में प्रवाहित कर
अपना कर्तव्य निर्वहन कर रहा
उसके कपड़े खून से लतए
बदबू से भरे हैं

ये बाजार तो व्यस्त है
अपनी अर्थव्यवस्था में
अपने शेयर बाजार में
कहीं मँहगी गाडियां बिक रही
कहीं कपड़े
कहीं जेवर

बस बिक नहीं रहा
दो जून की रोटी,
तन ढकने को कपड़ा

***

नवीन यादव की कविता

तृष्णा

मैं सागर हूँ
अनंत
क्षितिज के भी उस पार
ना ख़त्म होने वाला
गहरा रहस्यमय
न जाने कितना कुछ
अपने अन्दर समेटे
विशाल
मगर कितना अकेला
न जाने कब से खड़ा हूँ
बाहें फैलाए
शांत निष्चल
वहीं पर
इक सरिता के इंतजार में
जो आये
और समा जाए मुझ में
बिना अपने वजूद की परवाह किये
अपने किनारों से मुक्त
जिसकी चपलता खो जाए
मेरी अनंत गहराइयों में
अपने सफर से थकी
सर रखे मेरे सीने पर
और सो जाए
और मिटा दे मेरी
बरसों की तृष्णा
मगर
ये इंतजार
अनंत है
बिलकुल मेरी तरहां
ना मैं ख़त्म होता हूँ
और ना ये इंतजार

प्रमोद पाण्डेय की कविता

अवकाश पर

कहाँ जा रहे हो कुछ सोचो
मिला तुम्हें क्या जो कुछ चाहा ?
करने को तो किया बहुत
पर असर क्या रहा जाना, थाहा ?

इसको खींचो, उसे बिठाओ दुनियाँ मे बस इतना पाया
ममता की छाया में पलकर
भय को क्योंकर अस्त्र बनाया?

कहने को तो वजह बहुत है वाद, धर्म या दाना-पानी
मूल में लेकिन बात एक है
आत्मा की आवाज न जानी।

तर्क-कुतर्क में भेद न पाये
ऐसी बुद्धि कुबुद्धि समझो
हंसों से सीखो,
साक्षी बन विराट से तुम नाता जोडो।

गुरु स्वयं हो,
क्षमाशील तुम समाधान,
संतोष है तुममें
भव से उबरो, रचना के तुम यंत्र,
रचयिता है हम सब में।

सरल बाँसुरी सा बन जाओ
बहने दो चौतन्य की धारा
मानव हो तुम,
धर्म एक है प्रेम सिवा ना मिले किनारा।

***

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं, वह उन्नत नहीं हो सकता।

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

वकील अहमद की कविता

भारत से परिचय

परिचित हैं हम इस शब्द।
पर ना जाने क्यूँ अनजाने थे।।
अपने ही मुल्क में देखो।
हम बने हुए बेगाने थे।।

बातें करते तरह तरह की।
क्षेत्रवाद पे मरते थे।।
एक जुट कभी हुए नहीं।
पर दोषी दूजे को धरते थे।।

धर्म लिए बस पड़े रहे।
आपस में ही भिड़े रहे।।
देश हित की सुध ना ली।
एक दूजे पे चढ़े रहे।।

हम कठपुतली बने हुए थे।
डोर किसी को दिए हुए थे।।
हम करतब वही दिखाते थे।
जिसे देख वो मुस्काते थे।।

हम हिन्दू, मुस्लिम, सिख हुए।
बने ना हिंदुस्तानी थे।।
आपस में ही भिड़ते रहते।
एक दूजे में अभिमानी थे।।

देश विदेश की बात करें।
पर अपनी चौखट ना धोते थे।।
चाँद पहुंचने की सोच रहे।
शौंच में खेत पे होते थे।।

शर्मसार हर नारी थी।
बहन, बेटी वो दुलारी थी।।
घूंघट में हम रखते थे।
पर शौंच को खेत में भगते थे।।

जन धन योजन पाते थे।
पर खाता नहीं खुलाते थे।।
हर लाभ को मुंह भर तकते थे।
दो पैसों को ही भगते थे।।

सेना थी हथियार बहुत थे।
करने को प्रहार बहुत थे।।
जोश भी था लड़ने वाला।
शेर नहीं सिहार बहुत थे।।

संघवाद को खत्म करेंगे।
संघ की नीति अपनाएंगे।।
राष्ट्र पक्ष में कार्य करे जो।
ऐसा भारतवर्ष बनाएंगे।।

परिचय से जन को जाने।
हम जग परिचित हो जाएंगे।।
राष्ट्रहित जो बसा लें मन में।
हम भारत परिचय पा जाएंगे।।

***

हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

- स्वामी दयानन्द सरस्वती

जेएनयू की यादें

अविनाश

वो तारीख 4 अक्टूबर 2017 ही थी, जिस दिन मुझे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) में ताप्ती हॉस्टल आवंटित किया गया था। चूँकि मैं पहले कभी हॉस्टल में नहीं रहा था, इसलिए मन में हिचक तो थी ही, लेकिन मन में यह उत्साह था कि अब अरावली की पहाड़ियों के बीच इस बेहतरीन कैंपस के स्वच्छंद वातावरण में हॉस्टल में रहूँगा।

लेकिन आज जब हॉस्टल के नोटिस बोर्ड पर अपने नाम के साथ यह लिखा पाता हूँ कि मुझे इस महीने के अंत तक हॉस्टल को खाली करना पड़ेगा, तो मन में एक टीस भर जाती है। ज्ञात हो कि मैंने तथाकथित देशद्रोह सरीखा कोई काम नहीं किया है बल्कि मेरा एमए का कोर्स पूरा होने ही वाला है। इसी संदर्भ में हॉस्टल खाली करने का यह नोटिस लगाया गया है।

अब जबकि हॉस्टल में रहने के लिए गिनती के दिन बचे हैं तो पिछले दो साल की हॉस्टल की यादें परत दर परत सामने आ रही है–

1. सिर्फ एक हॉस्टल में रहने वाला ही जानता है कि सुबह 9:00 बजे उठकर 9:15 पर तैयार होकर क्लास जाने में कितना टैलेंट चाहिए।
2. नहाने के लिए आप लाइन में हो और आप बाथरूम के दरवाजे के बाहर से पूछते हैं– 'कितना देर लगेगा भैया? 'अंदर से लगभग कुढ़ते हुए वो प्राणी ऐसे बोलेगा मानो कि उसके प्रॉपर्टी में हिस्सा माँग लिया हो। अंदर से आवाज आएगी– "बस पाँच मिनट" और आप ठीक 300 सेकंड बाद फिर पूछते हैं कि "और कितना देर?" फिर वो नहाता हुआ लड़का फनफनाता हुआ बाहर आता है और आप बाथरूम में घुसकर एक विजेता होने का अनुभव करते हैं मानो एवरेस्ट पर चढ़ाई कर ली हो।
3. हॉस्टल में ही आपको ऐसे प्राणी मिलेंगे जो खुद 10 बजे उठेंगा और मेस में नाश्ते के लिये जाएंगे। जब मेस मैनेजर यह बताएगा कि नाश्ता तो 9.30 बजे तक ही मिलता है, अब तो यह खत्म हो गया तो वे प्राणी अपनी गलती न मानकर मेस मैनेजर को ही दो बात सुनाते हैं।
4. जिस दिन मेस में कढ़ी चावल और बिरयानी बनती है, पता नहीं उस दिन कहाँ से इतने लोग खाने आ जाते हैं? यह प्रश्न जेएनयू और हॉस्टल प्रशासन के सामने पिछले कई वर्षों से बना हुआ है, लेकिन इसका जवाब नहीं ढूंढा जा सका है। अब तो सिर्फ संयुक्त संसदीय समिति के जाँच के उपरांत ही इस प्रश्न का उत्तर सामने आएगा क्योंकि सीबीआई की जाँच पर तो भरोसा ही नहीं रहा।
5. गर्मियों में सुबह उठकर लाइब्रेरी के एसी रीडिंग रूम में जगह सुरक्षित करने के लिए दौड़ लगाने वाले प्राणी भी हॉस्टल में पाए जाते हैं।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के हॉस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों के बीच जन्मदिन मनाने की परंपरा बहुत पुरानी है, क्योंकि घर-परिवार से दूर हॉस्टल में रहने वालों के लिए यह आपसी मेलजोल बढ़ाने का भी एक जरिया होता है।

जेएनयू में जन्मदिन मनाने के लिए प्रसिद्ध जगहों के नाम कुछ इस प्रकार हैं– कमल कॉम्प्लेक्स खुला रंगमंच पार्थसारथी चट्टानें खुला रंगमंच, गोदावरी ढाबा, प्रसिद्ध 24×7 ढाबा, साबरमती हॉस्टल लॉन, ताप्ती हॉस्टल बास्केटबॉल कोर्ट, प्रशासनिक भवन के पास (यहाँ मनाने में डर भी लगता है क्योंकि पता नहीं कब प्रशासन नोटिस भेज दें)

इन तमाम जगहों का उपयोग तब किया जाता है, जब आपके दोस्तों की संख्या ज्यादा हो। यदि दोस्त कम हो तो अपने-अपने हॉस्टल में भी जन्मदिन मनाया जाता है।

जन्मदिन के प्रत्येक कार्यक्रम में कुछ प्राणी आपको ऐसे मिलेंगे जिनको देखकर ऐसा लगेगा कि उनको या तो जबरदस्ती लाया गया है, या वे मन-मसोसकर आये हैं। केक काटने के समय गाये जाने वाले 'हैप्पी बर्थडे सॉन्ग' के समय भी ये प्राण ी प्रायः चुप ही रहते हैं।

आजकल जेएनयू में केक काटने के उपरांत "बर्थडे बॉय" को लातों से मारने की बड़ी ही स्वस्थ परंपरा शुरू हुई है। बर्थडे बॉय को इस पिटाई का आभास ठंड के दिनों में ज्यादा होता है, क्योंकि तब सभी लोग जूते पहने होते हैं। लेकिन अभी तक

यह परंपरा लड़कियों के बीच लोकप्रिय नहीं हो पाई है, लेकिन यह उम्मीद की जानी चाहिये कि अगले कुछ वर्षों में इस विधा को लड़कियों के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए जेएनयू प्रशासन कुछ बजटीय प्रावधान करेगा।

चूँकि बर्थडे में एकदूसरे के चेहरे पर केक लगाने की परंपरा सिंधु घाटी सभ्यता से चली आ रही है, इसलिए इसका निर्वहन जेएनयू में भी किया जाता है। ऐसे लिखित दस्तावेज उपलब्ध हैं जिससे यह साबित होता है कि हड़प्पा सभ्यता में भी कुछ बेहद समझदार लोग ऐसे थे जो चेहरे पर केक लगाने को केक की बर्बादी कहते थे और आज जेएनयू में भी ऐसे समझदार लोग मिलते हैं, जिनका यह मानना है कि यह केक की बर्बादी है। एक रिसर्च के मुताबिक जेएनयू के ऐसे समझदार लोगों का डीएनए और हड़प्पा सभ्यता के समझदार लोगों के डीएनए में समानता पायी गयी है। इसपर अभी शोध चल रहा है।

बात जेएनयू की हो और छात्रसंघ के चुनाव की चर्चा न हो तो चर्चा अधूरी सी लगती है।

जेएनयू में हर साल नए सत्र शुरू होने के बाद अमूमन सितंबर में चुनाव होता है। ऐसे ही चुनावी महीने का एक दिन, शाम के 5 बजे का समय, स्थान-जेएनयू कैंटीन, फर्स्ट सेमेस्टर के 5 छात्र-छात्राओं का समूह, चर्चा का विषय-जेएनयू छात्रसंघ चुनाव।

एक लड़का स्पेशल चाय की चुस्की लेते हुए बोला-यार, इस बार वोट डालने जाएँ या नहीं? इतना सुनते ही जूस पीती हुई दूसरी लड़की लपककर बोली— Of course yaar, we have to vote because it's our fundamental right। तभी ढोकला खाती तीसरी लड़की बोल उठी-यार, वोट किस पार्टी को दें? तभी बगल में बैठे समोसा ठूँस रहे पीएचडी कर रहे भाई साहब अपने तजुर्बे को पेश करते हुए टपक पड़े और बोले— देखो मैं यहाँ पाँच साल से हूँ, मेरी मानो तो वामपंथी संगठन को ही वोट दो। इतना सुनते ही दूसरी तरफ बैठी लड़की जो मसाला डोसा पर टूट पड़ी थी, जो संभवतः भगवा पार्टी की समर्थक होंगी, तमतमाकर बोल पड़ी-देखो, मैं भी यहाँ तीन साल से हूँ, इन तीन सालों में वामपंथी संगठन ने कोई काम नहीं किया है। इतना सुनते ही फर्स्ट सेमेस्टर की दूसरी लड़की नीम्बू पानी पीते हुए बोली-वैसे तो पिछले चार साल में मोदी जी ने भी कोई काम नहीं किया है।

इतना सुनते ही माहौल और गर्म हो गया था। बात नोटबन्दी, जीएसटी से होते हुए राफेल घोटाले तक आ पहुँची थी। तभी माहौल की गंभीरता देखते हुए एक गंभीर स्वभाव की लड़की ने हस्तक्षेप किया और बोली "So guys, Let's stop this discussion-we should go to Library now'। इस तरह सभा समाप्त हुई और सभी लोग पुस्तकालय की तरह बढ़ गए।

यदि जेएनयू को "मिनी इंडिया" कहा जाय तो इसे अतिशयोक्ति कतई नहीं माना जा सकता, क्योंकि यहाँ तकरीबन हरेक राज्य के विद्यार्थी मिल जाएँगे। इतना ही नहीं, यूरोप, अमेरिकी महाद्वीप, अफ्रीकी छात्र के साथ-साथ पूर्वी एशियाई देशों जैसे-चीन, जापान, कोरिया, ताइवान के साथ नेपाल और बांग्लादेश जैसे पड़ोसी देशों के विद्यार्थी भी जेएनयू में पढ़ाई करते हैं।

ऐसे ही विविधता भरे माहौल में जब 2017 के मानसून सेमेस्टर में एडमिशन के वास्ते 26 जुलाई 2017 को पहली बार जेएनयू कैंपस में प्रवेश किया तो आत्मीय सुख का अनुभव हुआ। जेएनयू में एडमिशन संबंधित औपचारिकता कन्वेंशन सेंटर में पूरी की जाती है। इस कन्वेंशन सेंटर के बाहर आपको तमाम छात्र-संगठनों से जुड़े छात्र आपकी मदद के लिए तैयार रहते हैं ताकि नए छात्रों को परेशानी न हो। यहीं से मेरे मन में जेएनयू के प्रति सम्मान बढ़ गया। आखिर कुछ तो खास है— अरावली की पहाड़ियों में बसे इस लाल इमारतों की बोलती दीवारों में, यहाँ के शिक्षक और छात्रों में, क्योंकि आखिर इतने हमलों के बीच इसकी लोकप्रियता घटने की बजाय बढ़ती चली गयी। सिर्फ 2016 के विवादास्पद घटनाओं के कारण ही नहीं, बल्कि यह कैंपस हमेशा दिल्ली की तख्त पर बैठे सरकार से आँखों मे आँखे डालकर सवाल करने के लिए मशहूर रहा है। इसलिए इस कैंपस पर सबसे ज्यादा हमले भी हुए हैं, फिर भी यह जस का तस बना हुआ है। यहाँ मुझे इकबाल की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं—

यूनान ओ मिस्र ओ रूमा सब मिट गए जहाँ से,
अब तक मगर है बाकी नाम-ओ-निशाँ हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जमाँ हमारा।

एडमिशन के अगले दिन से हमारी कक्षाएँ शूरु हो गई। करीब 100 छात्रों के क्लास में तकरीबन प्रत्येक राज्य के छात्र थे। इसी कक्षा में हमें आंध्र प्रदेश से श्रीनिवास राव, राजस्थान से भरत जांगिड़, मध्यप्रदेश से हरीश कुशवाहा, उत्तरप्रदेश से ऋतु प्रकाश, प्रणवीर भारती, जम्मू कश्मीर से अनमीक्षा, हरियाणा से मनीषा, स्वाति, दिल्ली से वर्षा पाल, झारखंड से सोनू और संदीप और हमारे बिहार से ही आने वाले नीतीश जैसे दोस्तों से मिलना हुआ। इन सभी दोस्तों से मिलना और उनके राज्यों की सभ्यता, संस्कृति, खान-पान, इतिहास के बारे में जानने और समझने का अवसर मिला। मैं इसके लिए जेएनयू का हमेशा

शुक्रगुजार रहूँगा कि इस प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय ने देश के विभिन्न क्षेत्रों से आनेवाले लोगों से हमारा परिचय करवाया।

जेएनयू में शिक्षक और छात्रों का अनुपात तकरीबन 1:15 का है, जो संभवतः पूरे भारत में सबसे कम है। यही कारण है कि यहाँ के शिक्षक सभी छात्रों पर बराबर ध्यान दे पाते हैं। यहाँ के पढ़ाई का पैटर्न भी मुझे बेहद अच्छा लगा। यहाँ पारंपरिक पद्धति की बजाय 'ट्यूटोरियल सिस्टम' से पढ़ाई होती है, जिसमें सभी छात्रों को अपने हुनर दिखाने का अवसर मिलता है। यहाँ का मूल्यांकन पैटर्न भी बेहतरीन है जो ग्रेडिंग सिस्टम पर आधारित है। जेएनयू प्रशासन नियमित अंतराल पर व्याख्यान, सेमिनार, इंटरनेशनल कन्वेंशन आयोजित करता है, जिससे विद्यार्थियों को सीखने का अवसर मिले।

इन्हीं वजहों से जेएनयू NIRF रैंकिंग में पूरे भारत में पिछले चार सालों से दूसरे स्थान पर बरकरार है।

यदि इन अकादमिक मामलों से इतर बात करें तो चूँकि यह राजनीतिक रूप से बेहद जागरूक कैंपस है, इसलिए दुनियाभर में घट रही घटनाओं से भी यह कैंपस प्रभावित होता है। जेएनयू के प्रसिद्ध गंगा ढाबा इस मामले में शीर्ष पर है। पूरी रात खुला रहने वाला गंगा ढाबा राजनीतिक विचार-विमर्श का केंद्र है। खानपान के मामले में भी जेएनयू के ढाबे अपनी अलग पहचान रखते हैं– चाहे मुगल दरबार का मटन और चिकन हो, शम्भू ढाबा की मछली हो या मामू ढाबे की कुल्हड़ वाली चाय।

जेएनयू में कमल कॉम्प्लेक्स (KC) नामक एक छोटा सा मार्केट है, जिसमें रोजमर्रा की जरूरत की तमाम चीजें मिल जाती हैं। यहाँ छात्रों के लिए हेल्थ सेन्टर भी है, जिसमें प्राथमिक उपचार की तमाम सुविधा उपलब्ध है।

विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के वास्ते जेएनयू में कई क्लब भी हैं, जिसमें प्रमुख है–

1. Cycling Club, 2. Mountaineering Club, 3. Drama and Dance Club, 4. Badminton Club, 5. Photography Club, 6. Music Club, 7. Fine Arts Club, 8. Nature and Wildlife Club, 9. Debating Club, 10. Wellness Club

ये सभी क्लब छात्रों को अपने हुनर को दिखाने का अवसर देते हैं।

चूँकि जेएनयू में एडमिशन की एक अनोखी प्रणाली है, जिसमें पिछड़े इलाकों से पढ़ाई करने वाले छात्रों एवं लड़कियों और ट्रांसजेंडर को अतिरिक्त नम्बर देने की व्यवस्था है। जिससे यहाँ उड़ीसा के अत्यंत पिछड़े इलाके कालाहांडी से लेकर मुम्बई महानगर के छात्र भी दिखते है। यही तो इस कैंपस की खूबसूरती है।

यहाँ सिर्फ छात्र-छात्राओं के लिए ही नहीं बल्कि वर्किंग वुमन और शादीशुदा छात्रों के लिए भी हॉस्टल की व्यवस्था है।

इन तमाम खूबियों के कारण ही यह कहा जा सकता है कि पढ़ाई के मामले में जेएनयू स्वर्ग से कम नहीं है।

अब जबकि मैं इस कैंपस को छोड़कर जा रहा हूँ तो मुझे भारी मन से यह कहना पड़ रहा है कि जेएनयू हमेशा मेरे दिल में बसा रहेगा।

लव यू जेएनयू.....

***

रचनाएँ आमंत्रित

जेएनयू परिसर के आगामी अंकों के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं। कृपया अपने स्तरीय लेख, कहानी, कविता, समीक्षा, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत आदि सॉफ्ट या हार्ड रूप में अपनी फोटो एवं संक्षिप्त परिचय सहित निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :

301, राजभाषा प्रकोष्ठ, प्रशासन भवन,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067
दूरभाषः 91-11-26704023, मोबा- 7042783570
ईमेलः hindiunit@mail.jnu.ac.in अथवा sumersingh@mail.jnu.ac.in

अनुवाद

भारत में ब्रिटिश शासन

लेखक : कार्ल मार्क्स; अनुवादक : प्रशांत कुमार पाण्डेय

10.06.1853 विएना से टेलीग्राम से खबर आ रही है कि वहां तुर्की, सर्दिनिक और स्विस समस्याओं का शांतिपूर्ण हल निकाल लिया गया है। कल शाम लोकसभा में भारत से संबंधित मुददों पर बहस को पारंपरिक मूर्खतापूर्ण तरीके से आगे बढ़ाया गया। ब्लैकेट ने सर चार्ल्स वुड और सर जे हॉग पर आरोप लगाया कि इन दोनों के बयानों में एक गलत आशावाद की झलक दीखती है। मंत्रालय और अध्यक्ष के कार्यालय का बचाव करने वाले ने भरसक प्रयास किया कि आरोप वापस ले लिए जाएँ और आवश्यकता से अधिक प्रसिद्ध छुम ने संक्षेप में मंत्रियों से मसौदा वापस लेने का आग्रह किया। इस बहस को स्थगित कर दिया गया।

भारत एशियाई मापदंड के अनुसार एक इटली है, जहाँ इटालियन पर्वतों के जगह हिमालय, लम्बाई के खाड़ी के जगह बंगाल की खाड़ी, आपेनिन के जगह दख्खन तथा सिसली के जगह शिलांग है। इटली और भारत दोनों देशो में एक तरह की उपजाऊ भूमि पाई जाती है और दोनों ही जगहों की राजनैतिक व्यवस्था बिखरी हुई है। जिस प्रकार समय समय पर आक्रमणकारियों ने इटली को तलवार के बल पर कई भागों में विभाजित किया, ठीक वैसा ही भारत में भी देखने को मिलता है। यदि मुगलों और अंग्रेजों ने भारत पर शासन नहीं किया होता तो भारत कई स्वतंत्र राज्यों में बंटा होता और ये राज्य आपस में लड़ रहे होते। इन्हें शहरों और गांवों दोनों में गिना जा सकता। था। हालांकि भारत सामाजिक संरचना के स्तर पर इटली नहीं, बल्कि आयरलैंड है, जिसे पूर्व का आयरलैंड की संज्ञा दी जा सकती है। इटली और आयरलैंड का अजीब मिश्रण होने का कारण भारत की पुरानी धार्मिक संस्कृति में निहित है। भारत एक ऐसी दुनिया है, जहाँ प्रसन्नता और दुःख दोनों पाए जाते है। इस धर्म में इन्द्रियों का बहुत महत्व है और इसमें खुद को कष्ट देने वाली तपस्या भी होती है। यह लिंगम और सघंट का धर्म है। यह सन्यासियों और नर्तकियों का धर्म है।

मैं उन लोगों के विचार से सहमत नहीं हैं, जो प्राचीन भारत के स्वर्ण-काल में विश्वास करते हैं। हालाँकि मेरे अलावा सर चार्ल्स जैसे लोगों ने कुली खान को नियुक्त किया, जिससे मेरे बात की पुष्टि होती है। उदाहरण के लिए लोग औरंगजेब के शासनकाल को लेते हैं, या उस समय को जब उतर भारत में मुग़ल और दक्षिण भारत में पुर्तगाली शासन करते थे, या मुसलमानों का आक्रमण और दक्षिण भारत का उदाहरण लिया जाता है। या फिर कोई इतिहास में और डुबकी लगाना चाहे तो वह उस समय को उदाहरण मान सकता है, जिसकी गणना ब्राह्मण काल्पनिक रूप से करते हैं। यह भारत के दुर्दशा की शुरुआत ईसा पूर्व ही कर देता है। फिर भी इस बात में किसी को संशय नहीं हो सकता कि जो दुर्दशा अंग्रेजों ने भारत की की है, वह उस दुर्दशा से बिल्कुल अलग और असहनीय है, जिसे भारतीय लोग बिना विरोध के सहते आए हैं।

हमलोग यह देखने के आदी हैं कि एशियाई राष्ट्रों में यदि एक सरकार आने के बाद कृषि की दुर्दशा होती है तो दूसरी सरकार आने के बाद कृषि फिर से विकसित होने लगती है। जिस प्रकार यूरोप में उपज अच्छे और बुरे मौसमों पर निर्भर करती है उसी तरह भारत में उपज अच्छी और बुरी सरकारों पर निर्भर है।

इसलिए भारत में कृषि की दुर्दशा और कुप्रबंध के लिए केवल अंग्रेजों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। भारतीय कृषि पहले से ही पिछड़ी हुई है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अंग्रेज ऐसा इसलिए कर रहे है क्योंकि उनके मन में भारतीयों के खिलाफ कुछ है। यह एक ऐसी स्थिति से नहीं आता, जिसका बिलकुल अलग मतलब होता है– यहाँ इसका मतलब है पूरे एशिया के इतिहास में एक नया मोड़। भारत के इतिहास में राजनीति हमेशा से ऐसे ही बदलती है। भारत की सामाजिक व्यवस्था प्राचीन काल से उन्नीसवीं सदी के पहले दशक तक बिल्कुल नहीं बदली है। करघा और चरखा जिसे काफी संख्या में कारीगर और बुनकर विधिवत रूप से चलाते हैं, इस सामाजिक संरचना के, केंद्र बिन्दु थे। जिस समय के बारे में हम सोच भी नहीं सकते, तब से यूरोप भारत में बने शानदार वस्त्रों को खरीदता था। इसके बदले यूरोप भारत को बहुमूल्य धातुएं देता था, जो सोनार के लिए कच्छे माल का काम करती थी। गहनों के प्रति भारतीयों का इतना आकर्षण है कि वहां पर यह एक मूलभूत आवश्यकता की वस्तु और समाज का एक हिस्सा है। गहनों के प्रति भारतीयों के आकर्षण का इससे भी पता चलता

है कि वहां नंगे घुमने वाले निचले वर्ग के लोग भी कानों में सोने की बाली और गले में कोई एक गहना पहनते हैं। हाँथ और पैर की अँगुलियों में अंगूठी पहनना तो वहां आम बात है। औरत और बच्चे ज्यदातर बाँहों और पैरों में सोने या चांदी के गहने पहनते हैं। घरों में सोने और चांदी की देवताओं की मूर्तियाँ देखने को मिलती थी। यह अंग्रेजी घुसपैठ है, जिसने भारत की कृषि और हस्तशिल्प दोनों को बर्बाद कर दिया। इंग्लैंड ने शुरुआत इससे की कि उसने सबसे पहले भारतीय कपास को यूरोपीय बाज़ार से हटा दिया। उसके बाद उसने कपास की मातृभूमि कहे जाने वाले भारत में मशीनें लगाई और फिर वहां कपास उत्पादों की बाढ ला दी। 1818 से 1836 तक ब्रिटेन से भारत में धागों के निर्यात में 5200 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 1824 के दौरान अंग्रेजी मसलिन का निर्यात केवल दस लाख याई तक ही पहुंचा। 1837 में बढ़कर यह छः करोड़ चालीस लाख याई तक पहुँच गया। उसी दौरान दख्खन की जनसंख्या 150,000 से बीस हज़ार हो गई। यह विघटन कपास वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध भारतीय शहरों के लिए अंग्रेजी शासन का सबसे बुरा समय नही था। अंग्रेजी भाप मशीन और विज्ञान ने पूरे भारत में कृषि और हस्तशिल्प के बीच के गठजोड़ को तहस नहस कर दिया। ऊपर बताई गई दोनों स्थितियां– एक तरफ भारतवासियों ने इसे केंद्र सरकार को सुपुर्द कर दिया, ताकि वे खुद बड़े उपलब्ध काम करें, जो उनकी कृषि और व्यापार के लिए पूर्व स्थिति है। दूसरी तरफ लोग पूरे देश में फैले हुए थे और इससे कृषि और हस्तशिल्प एक दूसरे से जुड़े हुए थे। इस प्रकार से छोटे-छोटे शहरों की उत्पति हुई। इन दोनों स्थितियों ने प्राचीन काल से कुछ विशेष गुणों वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया था जिसे गाँव– व्यवस्था कहा जाता है। इस व्यवस्था में हर छोटी इकाई का अपना स्वतंत्र संगठन और अपना जीने का तरीका था.....

***

जितेन्द्र श्रीवास्तव* की कविता

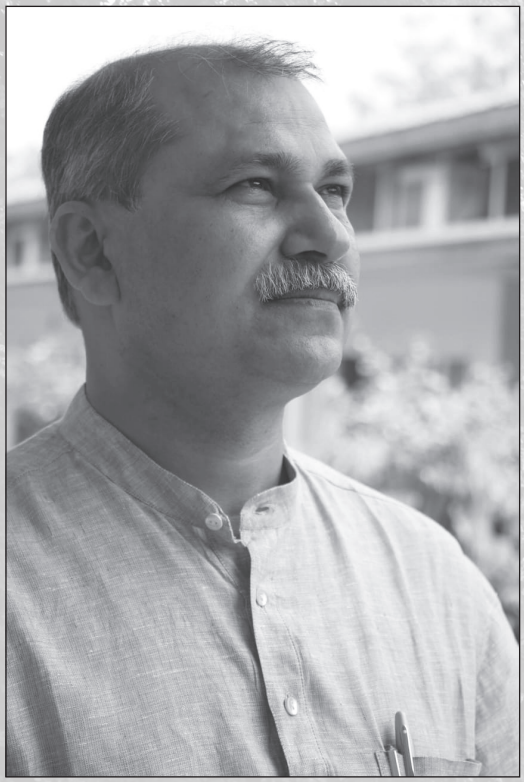

सोन चिरई

(एक सोहर सुनने के बाद)

बहुत पुरानी कथा है
एक भरे पूरे घर में
एक लड़की थी सोनचिरई

वह हँसती थी
तो धूप होती थी
फूल खिलते थे

वह चलती थी
तो वसन्ती हवा चलती थी

जिधर निकल जाए
लोगों की पलकें बिछ जाती थीं

और जैसा कि हर किस्से में होता है
उसका विवाह भी एक राजकुमार से हुआ

राजकुमार उस पर जान लुटाता था
उसके होंठ उसकी तारीफ में खुलते
उसकी जिह्वा उसके प्रेम के सिवा
और सारे स्वाद भूल गई थी

उसकी आँखों में नींद
और दिल में करार न था

और ऐसे ही दोचार वर्ष बीत गए
सोनचिरई की गोद न भरी
ननद को भतीजा
सास को कुल का दिया
पति को पुरुषत्व का पुरस्कार न मिला

ननद कहने लगी बज्रवासिन
सास कहने लगी बाँझ
और जो रातदिन समाया रहा उसमें साँसों की तरह
उसने कहा तुम्हारी स्वर्ण देह किस काम की
अच्छा हो तुम यह गृह छोड़ दो
तुम्हारी परछाईं ठीक नहीं होगी हमारे कुल के लिए

सोनचिरई बहुत रोई
मिन्नतें कीं
पर किसी ने न सुनीं

आँसुओं बीच एक स्त्री
घर के बाद
भटकने लगी ब्रह्माण्ड में

उसे जंगल मिला
जंगल में बाघिन मिली
उसने उसे अपना दुःख सुनाया
और निवेदन किया कि वह उसे खा ले

बाघिन ने कहा वहीं लौट जाओ जहाँ से आई हो
मैं तुझे न खाऊँगी
वरना मैं भी बाँझ हो जाऊँगी

सोनचिरई क्या करती!

वहाँ से सांप की बांबी के पास पहुँची
बांबी से नागिन निकली
नागिन ने उसका दुःख सुना
फिर कहा वहीं लौट जाओ जहाँ से आई हो
जो मैं तुझे काट खाऊँगी
तो बाँझ हो जाऊँगी

सोनचिरई बहुत उदास हुई
फिर क्या करती!
गिरतेपड़ते माँ के दरवाजे पहुँची

माँ ने धधाकर हालचाल पूछा
कौनसी विपत्ति में दुलारी बिटिया ऐसे घर आई है

बेटी ने अपना दुःख सुनाया
और चिरौरी की कि थोड़ीसी जगह दे दो माँ रहने के लिए

माँ ने कहा विवाह के बाद बेटी को
नैहर में नहीं रहना चाहिए
लोगबाग क्या कहेंगे
वहीं लौट जाओ जहाँ से आई हो

और सुनो बुरा न मानना बेटी
जो तुम्हारी परछाईं पड़ेगी
तो मेरी बहू बाँझ हो जाएगी
यह कहकर माँ ने अपना दरवाजा बन्द कर लिया

अब सोनचिरई क्या करती!
उसने धरती से निवेदन किया
अब तुम्हीं शरण दो माँ

दुःख सहा नहीं जाता
इन कदमों से चला नहीं जाता
जो लोग पलकों पर लिए चलते थे मुझे
उनके ओसारे में भी जगह न बची मेरे लिए
अब कहाँ जाऊँ तुम्हारी गोद के सिवा

धरती ने कहा तुम्हारा दुःख बड़ा है
लेकिन मैं क्या करूँ
जहाँ से आई हो वहीं लौट जाओ

जो मैं तुमको अपनी गोद में रख लूँगी
तो ऊसर हो जाऊँगी

और मित्रो इसके आगे जो हुआ वह किसी किस्से में नहीं है
हुआ यह कि सब ओर से निराश
सोनचिरई बैठ गई एक नदी के किनारे

एक दिन गुजरा
दो दिन गुजरा
तीसरे दिन तीसरे पहर एक सजीला युवक
प्यास से बेहाल नदी तट पर आ मिला

उसने सोनचिरई को देखा
सोनचिरई को देख
पलभर के लिए वह सब कुछ भूल गया

उसने विह्वल हो नरम स्वर में
सोनचिरई से दुःख का कारण पूछा
और सब कुछ जान लेने पर अपने साथ चलने का निवेदन किया

सोनचिरई पलछिन हिचकी
फिर उसके साथसाथ हो ली

और उसके साथ पूरी उम्र जीकर
जब वह मरी
तो आँसुओं से जारजार उसके आठ बेटों ने
उसकी अर्थी को कन्धा दिया

सोनचिरई आठ बेटों की माँ थी
वह स्त्री थी
और स्त्रियाँ कभी बाँझ नहीं होतीं

वे रचती हैं!
वे रचती हैं तभी हमआप होते हैं
तभी दुनिया होती है
रचने का साहस पुरुष में नहीं होता

वे होती हैं तभी पुरुष
पुरुष होते हैं।

*हिंदी के प्रसिद्ध कवि और आलोचक जितेन्द्र श्रीवास्तव भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू के एलुमनी हैं और वर्तमान में इग्नू नई दिल्ली में प्रोफेसर एवं कार्यकारी कुलसचिव हैं।

लेख

आरक्षण की प्रासंगिकता

ओमप्रकाश सैन

आरक्षण का अर्थ है, किसी व्यक्ति विशेष, वर्ग विशेष या कार्य विशेष के लिए पहले ही से स्थान निर्धारित कर देना। परंतु आरक्षण का सर्वाधिक प्रसिद्ध अर्थ किसी वर्ग विशेष का सरकारी नौकरियों, योजनाओं या शैक्षणिक संस्थाओं में स्थान निर्धारित किए जाने से लिया जाता है। आरक्षण की आवश्यकता के कारणों में प्रमुख कारण है प्राचीन काल में व्याप्त वर्ण व्यवस्था और शूद्र वर्ण के लोगों के साथ अन्य वर्गों द्वारा किया जाने वाला भेदभाव। हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथों जैसे मनुस्मृति, पाराशर स्मृति, रामचरित मानस, वशिष्ठ संहिता आदि अनेक धर्म ग्रंथों में शूद्रों के बारे में जो बाते लिखी गईं हैं उनसे ज्ञात होता है कि वैदिक काल में समाज में शूद्रों की दशा कितनी दयनीय थी। धीरे-धीरे इस वर्ण व्यवस्था ने आधुनिक समाज में जाति व्यवस्था का रूप ले लिया और व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले कार्य के आधार पर उनकी जाति निश्चित कर दी गईं। समाज में निम्न जाति के लोगों को पढ़ने-लिखने का, धन जमा करने का, मुकदमा करने का, व्यापार करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। उच्च जाति के लोगों ने समाज के आर्थिक संसाधनों पर एकाधिकार कर लिया तथा आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण निम्न जातियों की योग्यता प्रभावित हुईं।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भी दलितों की स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया क्योंकि अंग्रेजों को इससे कोई लाभ मिलने वाला नहीं था। परंतु ब्रिटिश काल में दलितों ने हिंदू धर्म की नीतियों से परेशान होकर मुस्लिम और ईसाई धर्म अपनाना शुरू कर दिया। बीसवीं सदी की शुरुआत में दलित वर्ग के लोगों में कुछ जागरुकता आई और उन्होंने अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाना शुरू किया। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम डॉ. भीमराव अंबेडकर का है। बीसवीं शताब्दी की शरुआत में ब्रिटिश सरकार द्वारा समाज के पिछड़े वर्गों को आरक्षण देने के लिए कुछ आदेश भी जारी किए गए। भारत को आजादी मिलने तक दलितों के उत्थान के लिए कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया जा सका परंतु संविधान सभा की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में एक दलित को नियुक्त करके यह संदेश दिया गया कि सरकार दलितों को मुख्य धारा में शामिल करने के लिए प्रतिबद्ध है। उस समय सरकार के पास पिछड़े वर्गों को मुख्य धारा में जोड़ने के लिए तीन प्रकार के विकल्प मौजूद थे। सर्वप्रथम सुविधाओं का था यानी समाज के पिछड़े वर्गों को शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि की व्यवस्था की जाए परंतु स्वतंत्रता के समय सरकार के पास आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण ऐसा संभव नहीं था। उच्च वर्ग अपनी आर्थिक संपन्नता के कारण सुविधाएँ हासिल करने में सक्षम था जो कि निम्न वर्ग नहीं कर सकता था। दूसरा विकल्प था वरीयता का, जिसमें समान रूप से योग्य व्यक्तियों में से पिछड़ों को वरीयता दी जाए। परंतु उसमें समस्या यह थी कि समान योग्यता हासिल करने का रास्ता इतना कठिन था कि उच्च वर्ग द्वारा शोषण के शिकार पिछड़े वर्गों को योग्य होने के बावजूद शैक्षणिक योग्यता हासिल करने के अवसर ही नहीं मिलते थे। तीसरा विकल्प था समाज के पिछड़े वर्गों को आरक्षण प्रदान करना, जिसके लिए सरकार ने संविधान में व्यवस्था की।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-14 में सभी के लिए विधि के समक्ष समानता और विधि द्वारा समान संरक्षण की बात कही गईं परंतु साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि समानता केवल समान व्यक्तियों के बीच ही हो सकती है। जिस प्रकार, कर आरोपित करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है। कि एक समान आर्थिक क्षमता वाले नागरिकों से समान कर लिया जाए उसी प्रकार सरकार द्वारा दिए जाने वाले संरक्षण में भी समान व्यक्तियों को समान संरक्षण दिया जाना अपेक्षित है। अर्थात अनुच्छेद 14 एक युक्तियुक्त वर्गीकरण की अनुमति प्रदान करता है।

अनुच्छेद 16 (1) के अनुसार सरकार किसी भी प्रकार की सरकारी नौकरी में सभी को समान अवसर प्रदान करेगी। अर्थात यहाँ भी समान व्यक्तियों को समान अवसर के लिए युक्तियुक्त वर्गीकरण की अनुमति विवक्षित है। परंतु पिछड़े वर्गों के आरक्षण को और अधिक महत्व देने के लिए अनुच्छेद 16(3) में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है और साथ ही पदोन्नति में आरक्षण के लिए अनुच्छेद 16(4) में उल्लेख है। समय-समय पर सर्वोच्च न्यायालय ने भी आरक्षण संबंधी-प्रावधानों की समीक्षा की और संविधान के अनुसार उसमें बदलाव के आदेश जारी किए गए। इन्द्रा साहनी बनाम भारत संघ के एक महत्वपूर्ण वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक महत्वपूर्ण बिंदुओं पर चर्चा की। जिसमें पिछड़े वर्गों का आष्ट जर सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ापन माना गया न कि जाति आधारित या आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर। साथ ही आरक्षण में आरक्षण की व्यवस्था को नकार दिया गया। क्रीमिलेयर की संकल्पना भी एक महत्वपूर्ण निर्णय था परंतु इसे केवल अन्य पिछड़ा वर्ग के आरक्षण पर

ही लागू किया गया, जिसमें आर्थिक रूप से सक्षम पिछड़े वर्गों को आरक्षण का लाभ न दिए जाने का फैसला लिया गया।

स्वतंत्रता के बाद कई दशकों तक आरक्षण का निर्णय प्रासंगिक था क्योंकि कई हजार सालों से समाज के उपेक्षित वर्गों को मुख्य धारा में लाने के लिए यह एक न्यायोचित रास्ता था। यदि आरक्षण का लाभ समाज के पिछड़े वर्गों को नहीं दिया जाता तो उच्च वर्ग द्वारा कभी भी उन्हें आगे बढ़ने का मौका नहीं दिया जाता और वे पहले की ही तरह हमेशा उच्च वर्ग की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित करने में लगे रहते। उन्हें शिक्षा और शासकीय सेवाओं में आने का अवसर शायद ही मिल पाता। भारत को गणतंत्र हुए 65 वर्ष बीत जाने के बाद यदि हम देखते हैं तो पता चलता है कि संविधान सभा ने जिस उद्देश्य से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया था, उसे उद्देश्य की प्राप्ति आज भी नहीं हुई है। आज भी उच्च पदों पर पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व नगण्य है। हालांकि निम्न पदों पर यह संख्या बहुत अधिक है क्योंकि उन पदों पर उच्च वर्ग के व्यक्ति कार्य नहीं कर सकते और पहले ही की तरह पिछड़े वर्गों को ही वे कार्य करने पड़ते हैं। साथ ही यह भी देखने में आया है कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों में से कुछ ही जातियाँ ऐसी हैं जिनको आरक्षण का लाभ मिला है और अब वे समाज की मुख्य धारा में पूरी तरह से मिल चुकी हैं। परंतु आज भी हजारों जातियाँ/समुदाय ऐसे हैं जो कि आरक्षण के लाभ से वंचित है।

आज आरक्षण के आधार को लेकर चर्चाएँ होती हैं। संविधान में और सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या के अनुसार आरक्षण का आधार सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन है। लेकिन बार-बार यह मुद्दा उठाया जाता है कि आरक्षण का आधार आर्थिक पिछड़ापन हो। आर्थिक पिछड़ेपन को निर्धारित करना लगभग असंभव कार्य है क्योंकि यदि आंकडों को देखा जाए तो लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रही है जबकि शायद वास्तविकता में ऐसा न हो क्योंकि आज बीपीएल राशन कार्ड बनवाने के लिए गरीब होने की आवश्यकता नहीं है बल्कि उसके लिए रिश्वत देने की क्षमता आवश्यक है। साथ ही अगर आर्थिक पिछड़ेपन को आरक्षण का आधार बनाया जाता है तो लोग इस लाभ को पाने के लिए कभी भी आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होना चाहेंगे, जो कि अपने आप में एक बड़ी समस्या है। आज कई जातियाँ आरक्षण का लाभ पाने के लिए आंदोलन और हिंसा का सहारा ले रही हैं क्योंकि वे आरक्षण को एक बैशाखी समझने लगे हैं। जिससे आसानी से रोजगार हासिल किया जा सकता है।

अतः तात्कालिक रूप से आरक्षण के प्रावधानों का प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि क्रीमिलेयर की संकल्पना को अनुसूचित जाति/जनजाति में भी लागू किया जाए क्योंकि जो लोग समाज की मुख्य धारा में शामिल होकर आर्थिक रूप से सक्षम हो चुके हैं उनको आरक्षण का लाभ देने का कोई अर्थ नहीं है। साथ ही यदि एक परिवार में एक व्यक्ति को आरक्षण का लाभ मिल जाए तो उसका परिवार अपने आप आर्थिक रूप से सक्षम हो जाता है। पिछड़े वर्गों में जिन वर्गों तक आरक्षण का लाभ अभी तक नहीं पहुंच पाया है उनके लिए आरक्षित स्थानों में से कुछ स्थान अलग से निर्धारित कर दिए जाएँ।

अब प्रश्न आता है कि आरक्षण कब तक दिया जाए। हजारों वर्षों की दासता झेल चुके पिछड़े वर्गों को समाज की मुख्य धारा में शामिल करना बहुत ही बड़ा कार्य है, जिसके लिए समय सीमा निर्धारित करना लगभग असंभव है। परंतु यदि सरकार और समाज मिलकर कुछ कदम उठाए तो शायद आरक्षण की आवश्यकता ही न पड़े। कुछ राजनीतिक दल वोट की राजनीति के लिए आरक्षण को एक सुविधाजनक हथियार मानते हैं और जाति व्यवस्था को बनाए रखना उनके लिए आवश्यक है क्योंकि उन्हें वोट विकास के लिए नहीं बल्कि जातिगत आधार पर मिलते हैं। राजनेताओं को अपनी स्वार्थपूर्ण राजनीति से दूर हटकर समाज से जाति व्यवस्था को समाप्त करने की दिशा में कदम उठाने चाहिए। सरकार द्वारा सभी नागरिकों को समान रूप से निशुल्क शिक्षा तथा योग्यता हासिल करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए। सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार आवश्यक है ताकि प्रत्येक नागरिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सके। गाँवों में विशेष कार्यक्रम चलाकर लोगों में जागरूकता लाई जाए ताकि वर्षों से चले आ रहे वर्ग विभेद को समाप्त किया जाए। सरकार को रोजगारपरक शिक्षा के लिए प्रबंध करना आवश्यक है और साथ ही रोजगार विहीन विकास की जगह रोजगार सृजक विकास आवश्यक है। क्योंकि यदि रोजगार ही नहीं होंगे तो आरक्षण का अर्थ ही नहीं है। पिछड़े वर्ग के युवाओं के लिए विशेष रूप से परीक्षाओं की तैयारी के लिए सरकारी मदद की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि वे आर्थिक रूप से संपन्न उच्च वर्ग के युवाओं के साथ बराबरी के साथ खड़े हो सके। सरकार को अपनी आर्थिक नीतियाँ इस प्रकार बनानी चाहिए ताकि अमीर और गरीब के बीच बढ़ती हुई खाई समाप्त हो सके।

इस प्रकार सरकार और समाज मिलकर ऐसे कदम उठाए ताकि आरक्षण का फायदा जरूरतमंदों को मिल सके और जाति व्यवस्था को समाप्त करने की दिशा में कदम उठाए ताकि हजारों वर्षों से चले आ रहे उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों के शोषण को समाप्त किया जा सके। साथ ही उन शोषित वर्गों को समाज की मुख्य धारा में शामिल होने के लिए आरक्षण की बैशाखी न थामनी पड़े। ईश्वर सभी व्यक्तियों को बिना भेदभाव के जन्म देता है। उनका शारीरिक और मानसिक विकास उनको मिलने वाली सुविधाओं पर निर्भर करता है। अतः यदि सरकार और समाज भी इस भेदभाव को समाप्त करने की दिशा में कदम उठाए तो शायद आरक्षण की आवश्यकता ही न पड़े।

***

लेख

राष्ट्रवाद और मानवतावाद

विकास शुक्ल

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में कहा था कि "राष्ट्र बनता है वहाँ के अवाम से। अगर अवाम ही न रही तो यह राष्ट्र किस काम का, आगे वे कहते हैं, प्रत्येक राष्ट्र में राष्ट्रवाद को प्रसार मिलना चाहिए किन्तु इसे आक्रामक तथा अंतरराष्ट्रीय विकास में बाधक नहीं बनने देना चाहिए।"

ऐसे ही हिंदी के महान कवि रामधारी सिंह दिनकर जी के लिए राष्ट्र का मतलब सिर्फ भूगोल नहीं था। उनके लिए राष्ट्र का मतलब उसमें बसने वाली जनता थी। दिनकर ने अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में लिखा है "सबको साथ लेकर चलने वाली संस्कृति ही भारत की पहचान है। जिसमें नफरत और अलगाव की संस्कृति के लिए कोई जगह नहीं है।" स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि राष्ट्र ऐसे लोगों का एक सम्मुच्य है जिनके बीच सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक धार्मिक संबंध का न केवल अस्तित्व होता है, बल्कि वे सबको एकजुट भी करते है। राष्ट्रवाद की अवधारणा के स्पष्ट एवं तथ्यात्मक होने पर भी उसकी व्याख्या विवाद का विषय रही है। राष्ट्र राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद जैसे शब्दों को आसानी से परिभाषित नहीं किया जा सकता। राष्ट्रवाद ने आधुनिक विश्व पर जितना विषम और व्यापक प्रभाव डाला है, उसकी तुलना में राष्ट्रवाद के प्रचलित सिद्धांत और परिभाषा नहीं के बराबर है।

राष्ट्रवाद की अवधारणा एक अपेक्षाकृत आधुनिक घटना है जोकि 17वीं सदी यूरोप के बेस्फोलिया की संधि से शुरू हुई। इसी बेस्फोलिया शांति से यूरोप में राष्ट्र राज्यों वाली व्यवस्था अस्तित्व में आई बेस्टफोलियन व्यवस्था ने राष्ट्र राज्यों के बीच वर्चस्व के लिए यूरोप तथा उसके उपनिवेशिक देशों में युद्ध के एक नये सिलसिले का आगाज भी करवाया जो अनेक छोटे-छोटे युद्धों और नेपोलियन के अभियानों एवं फैंको पर्शियन युद्ध (1870-71) से होता हुआ 20वीं सदी में दो विश्व युद्धों तक जारी रहा और उसके बाद भी।

राष्ट्रराज्यों के रूप में यूरोप के नये उदीयमान मध्यवर्ग (बुर्जुआ वर्ग) को आखिरकार संप्रभुता का वह माध्यम मिल गया था जिसके लिए वे लंबे समय से संघर्ष करते आ रहे थे। मजहबी सोपानों पर आधारित संप्रभुतों का सामन्ती स्वरूप उनके विकास में बाधक था और उससे छुटकारा पाने के क्रम में संप्रभुता के कुछ संक्रमणकारी रूप भी सामने आए जिनका जिक्र आगे किया जाएगा।

राष्ट्रवाद ने यूरोप के नये पूंजीवाद वर्ग को अपना घरेलू (राष्ट्रीय) बाजार संगठित और संरक्षित करने का तथा राष्ट्रीय हित के लिए दूसरे देशों तथा उपनिवेशों पर अपना आर्थिक-राजनैतिक सांस्कृतिक वर्चस्व कायम करने का एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करवाया राष्ट्र राज्यों के विकास की इसी प्रकिया में राष्ट्रवाद की विचारधारा अस्तित्व में आई। राष्ट्र राज्यों के साथ-साथ एक अमूर्त राष्ट्र जनता जिसके हितों के लिए उसके गौरव और सम्मान के लिए बाकी जनता आपने सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहती है। इस तरह राष्ट्र के अंदरूनी मतभेदों, टकरावों और संघर्ष को पृष्ठभूमि में धकेलकर इस वर्ग ने अपने वर्चस्व के हित में देश और विदेश में समय-समय पर अमूर्त राष्ट्र-जनता की मूर्त राष्ट्र जनता के रूप में गोलबंदी की इस तरह नवजागरण ज्ञानोदय और धर्म सुधार के साथ-साथ राष्ट्र राज्य भी आधुनिक युग का प्रतीक बन गया। औद्योगिक विकास तथा पूंजीवाद के विकास के साथ ही इसका भी प्रसार होता गया। आज राष्ट्रवाद का प्रयोग पूंजीवाद अपने हितों की रक्षा के लिए दक्षिणपंथी राजनैतिक पार्टियों को आगे लाकर करता है। यह सोचने में थोड़ा अजीब लग सकता है परंतु राष्ट्रवाद जैसे शब्द को बनाने तथा इसके विकास और प्रसार में भी पूँजीवाद ही है। कैसे पूंजीवाद के विकास के साथ इस अवधारणा का विस्तार और विकास हुआ क्यों और कैसे इसके पक्ष में इतनी सार्वभौमिक और गहन संवेदनात्मक स्वीकार्यता उठ खड़ी हुई इस पर विचार करना पड़ेगा।

राष्ट्रवाद का विकास जिस जटिल ऐतिहासिक शक्तियों के संस्करण और निचोड़ से हुआ उसको भी पर्वकालिक साहित्य तथा अज्ञात मकबरों प्रतीकों का फर्जी इस्तेमाल करके सजाया गया तथा बखूबी वैज्ञानिक तरीकों से लोगों की संवेदनाओं को उससे जोड़ा गया। इस भावना के विकास से व्यक्ति के अहंम 'स्व' को महत्व न देकर राष्ट्र को उसके ऊपर थोपा गया।

धर्म और राष्ट्र एक अलग-अलग संकल्पना है, क्योंकि धर्म की अवधारणा बहुत प्रचीन है, जबकि राष्ट्रवाद का उदय पूँजीवादी

हितों की सुरक्षा के लिए आधुनिक काल में हुआ है। भारत के संदर्भ देखा जाए तो भारत बहुत पहले से विभिन्न जातियों तथा समुदाय में बंटा हुआ था जिनके अपने-अपने हित भी थे उनके हितों तथा अस्मिताओं को दबाकर राजनैतिक फायदे के लिए एक काल्पनिक राष्ट्रवाद गढ़ा गया और यह आज भी पूंजीवादी तथा कुछ आभिजात्य वर्ग के हितों की रक्षा कर रहा है। वह मनुष्य के व्यक्तिगत भावना की कद्र ही नहीं करता बल्कि राष्ट्र को ही सब कुछ मान कर चलता है। राष्ट्रवाद को पूरी तरह समझने के लिए हमें न केवल राष्ट्रवाद से संबंधित एवं उस पर आरोपित की गई राजनैतिक विचारधारा को सुनियोजित ढंग से समझना पड़ेगा, जिसके चलते राष्ट्रवाद जैसी विचारधारा का जन्म हुआ।

मध्यकाल में जितना ज्यादा महत्व धार्मिक अंधविश्वासों तथा वंशवादी राज्य व्यवस्थाओं को दिया जाता था उससे अधिक महत्व आज आधुनिक काल में राष्ट्रवाद को दिया जाता है। जिस तरह मध्यकाल में वंशवादी व्यवस्था के जरिये कुछ प्रमुख व्यक्तियों के हितों की रक्षा हो रही थी। उसी तरह राष्ट्रवाद के पीछे भी पूँजीपति और कुछ आभिजात्य लोगों के हितों की रक्षा होती रही है या कहे तो हो रही है। इसलिए ये लगातार राष्ट्रवाद को बढ़ावा देते है।

"एरिक होब्सबोम ने सही ही कहा है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ हर वर्ष नए सदस्यों की भर्ती करता है जैसे ही लगता है कि उसके प्रयास से पुराने छोटे राज्यों का विलय एक बड़े राष्ट्र में हो रहा है, वह नया राष्ट्र अपनी सीमाओं के भीतर सिर उठाते उपराष्ट्रवाद के असंतोष से घिर जाता है। ये समेकित राष्ट्र एक दिन पुनः सम्पूर्ण स्वायत्त राष्ट्र बनने का सपना देखते रहते हैं। हकीकत यह है कि राष्ट्रवाद के युग की समाप्ति की भविष्यवाणी कहीं दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती है बल्कि आज तो राष्ट्रवाद सार्वभौमिक राजनैतिक पटल का सबसे वैध सिद्धान्त प्रतिपादित हो रहा है।"

18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी के शुरुआती दिनों में राष्ट्रवाद को ज्यादा ही बढ़ावा दिया गया। यह वह समय भी था जब पूँजीवाद व्यवस्था यूरोप में अपने उच्चतम स्तर पर थी। जिसके विरोध में छोटे-छोटे कम्युनिस्ट संगठन भी बनने की प्रक्रिया में थे और लगातार पूँजीवाद को टक्कर दे रहे थे। प्रत्येक देश में एक कम्युनिस्ट पार्टी बनती जा रही थी। भारत में भी इन्हीं दिनों 26 दिसम्बर 1925 को कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया की स्थापना कानपुर में हुई। भारत में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना करने में महत्वपूर्ण योगदान एम एन रॉय का था ये वही एम एन रॉय है, जो कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंटरनेशनल में भारत की तरफ से भाग लेने रूस गए थे कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंटरनेशनल साम्यवादी संगठन था जो पूरे विश्व को साम्यवाद बनाने की वकालत करता था इसकी स्थापना ब्लादिमिर एललिएच लेनिन ने सन 1919 में की थी।

इसी समय हिटलर भी जर्मनी में राष्ट्रवाद के नाम पर नाजीपार्टी का गठन कर रहे थे और उन्होंने अपने राष्ट्रवाद के लिए दुनिया को दूसरे विश्व युद्ध में ढकेल दिया तथा यहूदियों और वामपंथियो का खुले आम कत्लेआम किया जो बर्बरता और क्रूरता उदाहरण है। इसी आधार पर टॉम नेयर्न जैसे राष्ट्रवाद के सहानभूतिक अनुयायी भी यह कहने को बाध्य हो जाते है कि 'राष्ट्रवाद' आधुनिक प्रगतिशील इतिहास का रोग है। इसकी तुलना उस मानसिक विक्षिप्तता से की जा सकती है जो व्यक्ति के सोचने-समझने की शक्ति को अपरिहार्य रूप से दुर्बल कर देती है और धीरे-धीरे व्यक्ति मतिभ्रम का शिकार हो जाता है। यह स्थिति मुख्यतः उस धर्मसंकट से जन्म लेती है जो आज समूचे विश्व को अपनी गर्त में लेती जा रही है और लोग निरुपाय हो गए हैं और इस बीमारी का फिलहाल कोई इलाज नहीं है"

राष्ट्रवाद तथा मानवतावाद दो अलग-अलग विचारधारा के शब्द है। जहाँ राष्ट्रवाद अपनी नस्ल, जातीय आस्मिता, संस्कृति, भाषा, पहनावा और धर्म आदि को प्रमुखता देता है वहीं मानवतावाद देशों की सीमाओं का भी अतिक्रमण करने में भी नहीं चूकता है। मार्क्स के अनुसार देश की सीमा तथा राष्ट्रवाद मजदूरों और व्यक्तियों को आपस में मिलने में बाधा उत्पन्न करती है। मानवतावाद सिर्फ मानव जीवन को महत्व देता है।

बेनेडिक्ट एंडरसन ने अपनी पुस्तक 'इमैजीड कम्युनिटीज में राष्ट्रीय चेतना के उद्भव पर विचार करते हुए छापेखाने की महत्वपूर्ण भूमिका पर ध्यान आकृष्ट किया है। 18वीं सदी के अंत में बिकाऊ माल के रुप में छापेखाने के विकास का पूर्णतः समकालीन नवीन विचारों वाली पीढ़ी पर व्यापक प्रभाव पड़ा। एंडर्सन के अनुसार मुद्रित भाषा ने राष्ट्रीय चेतना को प्रभावित किया। छापेखाने के आविष्कार ने भाषा को स्थिरता प्रदान की जिसने लंबे अंतराल तक राष्ट्र के आत्मनिष्ठ विचार को केंद्रीय, परिपक्व बिम्ब प्रदान करने में सहायता की। इस छापेखाने का लाभ जितना धार्मिक संस्थानों ने उठाया उससे ज्यादा बाद में आकर इन राष्ट्रवादियों नेताओं ने उठाया।

अंग्रेजो के आने के बाद से भारत में तरह-तरह के बदलाव आए। लोगों के जीवन जीने की कला में बहुत बदलाव आया। इस बदलाव को शैक्षिक स्तर पर सबसे अधिक ही महसूस किया जा सकता है। क्योंकि शैक्षिक स्तर पर आए बदलाव ने सोचने के तरीकों में भी बदलाव किया। अंग्रेजों ने जब पढ़ाई जाने सामग्री पर विचार किया तो उनके हाथ लगे वेद, पुराण तथा

परंतु अंग्रेजों को यह सब रास नहीं आया और उन्होंने भारत का ऐतिहासिक रूप से अध्ययन करवाया और अपने ग्रंथ स्वयं तैयार करवाए। जिसमें उनका स्वार्थ तो था ही फिर भी उसने लोगों की चेतना को प्रभावित किया और वे भारत को नए तरीके से चित्रित करते थे। और उसी के बरक्स और भी इतिहास ग्रंथ लिखा जा रहा था जिसे हम चाहे तो राष्ट्रवादी इतिहास ग्रंथ कह सकते है जो आज भी विश्व विद्यालयों के पाठ्यक्रम में पढ़ाया जा रहा है। भारत जैसे देश में जिसकी जनसंख्या सवा सौ करोड़ से ज्यादा हो उसे ज्यादा समय तक गुमराह नहीं किया जा सकता है। पर आज के समय इन इतिहासों तथा उनके लेखकों की परत दर परत खुलने लगी है।

भारत के संदर्भ में जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि "भारत राष्ट्र है ही नहीं, यह तो राष्ट्रों का राष्ट्र है।" परंतु दक्षिणपंथी विचारक इसे महाभारत के समय से ही राष्ट्र घोषित करते आ रहे है जिस समय राष्ट्र की अवधारण ही नहीं थी। अब उनका क्या किया जाए? फिलहाल पता नहीं। आज जब भारत में कोई राष्ट्रवाद पर पेपर लिखता है तो राष्ट्रीयता के लिए धार्मिक सामाजिक आन्दोलनों को राष्ट्रीयता की विशेषता बताता है। उनसे यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए कि जिन धार्मिक आंदोलन ने राष्ट्रीय एकता की बात की उन्होंने भारत को तोड़ा या जोड़ा? उदाहरण के लिए हम भारत के हिंदू धर्म को ले। आज के राष्ट्रवादी नेता बड़े गर्व से कहते हैं कि, हिन्दू धर्म भारत का सबसे पुराना धर्म है परन्तु प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर ने अपने इतिहास ग्रंथ में बताया है कि 1857 ईस्वी के आने तक बिहार तथा उत्तर प्रदेश के लोग अपनी पहचान हिन्द के रूप में न बताकर अपनी जाति जैसे कि चमार, धोबी, कहांर, कायस्थ तथा बनिया के रूप में करते थे। आज भी बहुत संख्या में ऐसे लोगों को देखा तथा रेखांकित किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि "राष्ट्रवादी तथा हिंदूवादी" अवधारणा जिसमें भारत के संदर्भ में बहुत अधिक अन्तर नहीं है, का विकास 19वीं शताब्दी के अंत तथा 20वीं शताब्दी के शुरुआती दिनों में हुआ।

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत उपनिवेशवाद के समस्या से जूझ रहा था। जिससे छुटकारा पाने के लिए सभी जाति तथा धर्म के लोगों का साथ आना जरूरी था। इस बात को भारत की समस्त राजनैतिक पार्टियां जान चुकी थी। इसलिए इन नेताओं ने अलग-अलग तरीको से लोगों को संगठित करना शुरू किया। इन्हीं संगठनों ने बाद में जाकर हमें स्वतंत्रता दिलाई परंतु इन राष्ट्रवादी संगठनों ने व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व को खत्म भी कर दिया। यही नहीं इन नेताओं ने लोगों के भावनाओं का गलत इस्तेमाल करके दंगे भी करवाये। और लोगों को आंतरिक समस्या से दूर रखा।

डॉ भीमराव अंबेडकर कहा करते थे "जब देश तथा मेरे बीच चुनाव होगा तो मैं पहले देश को चुनूँगा परंतु वहीं अगर मेरे तथा दलित, शोषित, पीड़ितों के बीच चुनाव। होगा तो मैं पहले दलितों शोषितों, पीड़ितों को चुनूँगा" यहां अम्बेडकर जितना महत्व देश को देते है उतना ही महत्व देश की जनता को भी देते है। इससे यह स्पष्ट होता है कि देश के लिए। राष्ट्रवाद से ज्यादा लोगों का जीवन ज्यादा महत्वपूर्ण है अर्थात देश तभी बनता है जब उसमें रहने के लिये अवाम होती है अगर अवाम ही नहीं है तो देश किस काम का।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी पुस्तक राष्ट्रवाद में कहा है "राजनैतिक सभ्यता जिसका जन्म यूरोप की मिट्टी में हुआ और तेजी से उगने वाले खरपतवार की तरह अब पूरे विश्व में फैल चुकी है, अनन्यता पर आधारित है। "यह अन्यदेशीय लोगों को अपने पास न फटकने देने के लिए उनका उन्मूलन करने के लिए सदा तत्पर रहती है इसकी प्रवृत्ति मांसाहारी या नरभक्षी होने की है। यह अन्य लोगों के संसाधनों को हड़प लेती है और उनके समूचे भविष्य को निगल लेने को सदा तैयार रहती है यह राजनैतिक सभ्यता, वैज्ञानिक है। मानवीय नहीं– यह अपने मंदिरों में लालच की मूर्तियों को प्रतिष्ठित करती है और उनकी पूजा के खर्चीले कर्म कांडों पर खूब गर्व करती है और उसे देशभक्ति का नाम देती है। आगे वे कहते है कि नैतिक आदर्श को दुर्बल बनाने का प्रयास धीरे-धीरे समाज के प्रत्येक सदस्य पर पड़ता है वह मानव स्वभाव की हर पवित्र चीज के प्रति कटु अविश्वास जगा देती है।

आगे रवीन्द्रनाथ टैगोर उसी पुस्तक में कहते है कि, राष्ट्र का विचार मानव द्वारा बनाई गई बेहोशी की सबसे शक्तिशाली दवा है, इसके असर से पूरा देश नैतिक विकृति के प्रति बिना सचेत हुए, स्वार्थ सिद्धि के सांघातिक कार्यक्रम को व्यवस्थित ढंग से लागू करने लग जाता है। वो यहीं नहीं रुकते आगे कहते है" भारत कभी सही मायने में राष्ट्रवादी बना ही नहीं बचपन से ही मुझे शिक्षा दी जा रही है कि राष्ट्र की पूजा ईश्वर तथा मानवता की भक्ति से भी बढ़ कर है। मुझे लगता है कि मैं इस तरह की शिक्षा से ही आगे निकल आया हूँ। और मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे देशवासी उस शिक्षा के विरुद्ध लड़कर सही अर्थों में। लाभान्वित होंगे जो आज यह सिखाती है कि देश मानवता के आर्दशों से बड़ा है।

राष्ट्रवाद एक बहुत बड़ा खतरा है तथा मानवता के लिए संकट पैदा करता है। यह मानव जीवन को पशुता की ओर ले जाता है।

क्या टैगोर के ये विचार आज के आधुनिक समाज को कठघरे में खड़ा नहीं करता...?

भारत में विश्व हिन्दू परिषद, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन ने बेहोशी की वैसी ही शक्तिशाली दवा नहीं खोज लो है जो समाज को लगातार गर्त में लेती जा रहा है। भारत में राष्ट्रवाद के नाम पर जो हो रहा उसका जिक्र यहां मैं नहीं करना चाहता क्यों कि आप सभी उससे अच्छी तरह वाकिफ है भारत के अन्दर के सभी विभेदों विषमताओं और असहमतियों को अनदेखा करके पूंजी के और राजनैतिक हितों के लिए फर्जी राष्ट्रवाद इन संगठनों के द्वारा तैयार किया गया है। जो आसानी से देश के नाम पर लोगों को कुछ भी करने को प्रेरित करता है।

राष्ट्रवाद मानवता से ऊंचा मूल्य बनकर शोषण और युद्ध की पीठिका तैयार करता

भारत के राष्ट्रपिता कहे जाने वाले महात्मा गांधी जी राष्ट्रवाद की व्याख्या हिन्दू और मुस्लिम के संदर्भ में करते है वे कहते है कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह हिन्दू हो या मुस्लिम हो जब तक एक छत के नीचे नहीं आएगा तब तक भारत में राष्ट्रवाद नहीं आएगा। यहां महात्मा गांधी जी राष्ट्रवाद को हिन्दू मस्लिम के एकता से जोड़ कर देखते है।

राष्ट्रवाद के लिए जरूरी है कि धर्मों की कट्टरता का कम होना, भारत में राष्ट्रवाद अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक के बीच सामंजस्य ही है। महात्मा गांधी ने सदैव ही दक्षिणपंथी विचारों वाली राष्ट्रवादी ताकतों से अपने राष्ट्रवाद की अलग व्याख्या की है।

भारत में एक राष्ट्रवाद का दौर 1882 के बाद से माना जा सकता है जब बंकिम चन्द्र चटोपाध्याय ने अपने उपन्यास में वंदे मातरम गीत लिखा जो बाद में राष्ट्रवाद का मुखरस्वर बना। वन्देमातरम गीत से प्रेरित होकर अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने भारत माता के चित्र का खांका खिंच जो राष्ट्रवाद के प्रतीक चिन्ह बन गया। इन सभी से प्रेरित होकर विनायक दामोदर सावकर द्वारा लोकप्रिय की गई हिंदुत्व की आवधारणा राष्ट्रवाद का मुख्य स्वरूप बन गयी। हिन्दू राष्ट्रवादी संघ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इसी हिंदुत्व का हिमायती है।

विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक "हिंदुत्व हू इज ए हिन्दू?" में लिखा है कि समस्त राजनीति का हिन्दुकरण करो और समस्त हिन्दुडम का सैन्यीकरण करो।

यही आह्वान आगे चलकर हिन्दू अस्मिता और हिन्दू राष्ट्रवाद का नारा बन गया सावरकर यहीं नहीं रुकते बल्कि और भी आगे बढ़कर लिखते है कि हिंदुत्व मात्रा धार्मिकता या आध्यात्मिकता का इतिहास नहीं है ये अपने आप में पूर्ण इतिहास है।

एक उदाहरण के द्वारा इसको और स्पष्ट किया जा सकता है जो पीपुल्स पब्लिशिंग हॉउस से प्रकाशित पुस्तक हिन्दू राष्ट्रवाद और उसका यथार्थ जो कृष्णा झा द्वारा लिखी गयी है। वो बताते है कि 7 दिसम्बर 1947 को जब भारत का विभाजन हो चुका था, लाखों हिन्दु और मुस्लिम परिवार विस्थापित होकर एक हिस्से से दूसरे हिस्से में पहुँच रहे थे, एक सभा बुलाई गई। इस सभा का मूल उद्देश्य ही था भारत में पाकिस्तान से आए हिन्दुओं की आहत भावनाओं पर साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ाना ताकि हिन्दू राष्ट्र की फीकी पड़ती छवि को पुनः प्रतिष्ठित किया जा सके।

यह सभा दिल्ली में हुई और इसमें जो तत्व शमिल हुए राष्ट्रवाद को मूल उद्देश्य के रूप में स्थापित संस्कृति और सम्प्रदाय के समर्थक थे, जमींदार और सामंतों के प्रतिनिधि थे और इन सबके साथ ही जे.के. बिड़ला के नेतृत्व में बड़े पूंजी पतियों के प्रतिनिधि भी शामिल थे।

इन सबके बीच गोलवरकर ने स्वयंसेवक के कामों की सराहना की, तथा कांग्रेस और गांधी जी की मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति की आलोचना भी की। स्पष्ट था की, यह मात्र एक दक्षिणपंथी राजनैतिक सोच ही नहीं थी, इसके साथ जुड़े थे आर्थिक हित भी। ये हित किसी राजनैतिक दल की नीतियों में सीमित नहीं हो सकते क्योंकि, उनको सम्प्रभुत्व चाहिए सम्पूर्ण समाज पर। जैसा की पहले भी बताने की कोशिश रही है की राष्ट्रवाद किसके हितों की रक्षा करता आ रहा है। वह इस उदाहरण से और भी स्पष्ट हो गया।

माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 23 अगस्त 2016 को एक जनसभा को संबोधित करते हुए कहा था की, राष्ट्रवाद भाजपा की पहचान है, राष्ट्रवाद ने ही हमें दो साल पहले सत्ता दिलाई थी और आगे भी दिलाएगी - 23 Aug 2016 NDTV News.

भारत का राष्ट्रवाद आज के संदर्भ में सिर्फ राजनैतिक बयानों से नहीं फैल रहा है। इसके पीछे मीडिया तंत्र से लेकर सोशल मीडिया तंत्र का खूब उपयोग किया जा रहा है।

मानवतावाद शब्द का प्रयोग 18वीं सदी के मध्य एक विचारधारा के रूप में हुआ वैसे इसके मायने हमारे यहाँ सदियों से है। परंतु 18वीं सदी के बाद से इस शब्द का एक अलग ढंग से शुरू हो गया। मजे की बात ये है कि इसकी हिमायत उन्हीं राष्ट्रवादी देशों ने सबसे पहले कि जो राष्ट्रवाद का समर्थन करते आ रहे थे। 1765 ई. में एक फ्रेंच एनलाइटमेंट पत्रिका में छपे

एक गुमनाम आलेख में कहा गया था कि, "मानवतावाद एक समान्य प्रेम है यह एक सदाचार है फिर भी अभी तक हमारे बीच बेनाम है।

मानवतावाद मानव मूल्यों और चिताओं पर ध्यान केंद्रित करने वाला अध्ययन या दर्शन अभ्यास का एक दृष्टिकोण है।

रवींद्रनाथ टैगोर ने जहाँ राष्ट्रवाद को नकारा है वही मानवतावाद को प्रेम तथा भाईचारे का आधार माना है– मानवतावाद प्रकाश की वह नदी है जो सीमित से असीमित की और जाती है।

एम एन राय के अनुसार, "नवीन मानवतावाद व्यक्ति के सम्प्रभुता की घोषणा करता है। वह इस मान्यता को लेकर चलता है कि एक ऐसे समाज का निर्माण हो जो तर्क पर आधरित हो, नैतिक हो क्योंकि मनुष्य प्रकृति से ही तर्कशील विवेकी एवं नैतिक प्राणी है तथा नवीन मानवतावाद विश्वव्यापी है।

मानवतावाद की पहली विशेषता यह है कि मानव मानवतावाद का केंद्र बिंदु है। सभी मानवतावादियों ने सदैव लोकतंत्र का समर्थन किया है। व्यक्ति को स्वतंत्रता एवं व्यक्तित्व के विकास का समान अवसर मिले इसकी हिमायत मानवतावाद करता है। मानवता ही है जो विश्व के लिए शांति का मार्ग प्रस्तुत करेगी। मानवतावाद का दृष्टिकोण व्यापक रहा है यह हमेशा से सबके हितों की बात करता आ रहा है। मानवतावाद ने कभी किसी। साम्प्रदायिक ताकत को बढ़ावा नहीं दिया बल्कि उसके विपरीत समानता, सद्भाव तथा शांत का प्रयास करता आ रहा है। मानवतावादियों ने कभी आंतकवाद तथा नक्सलवाद का खत्म करने के लिए हिंसा की बात नहीं कि बल्कि बातचीत तथा समझौतावादी राजनीति को बढ़ाने का प्रयास किया है। मानवतावाद व्यक्ति के अंदर नैतिक गुणों तथा मानवीय मूल्यों का संचार करता है। जिससे मनुष्य के अन्दर की पाशविक प्रवृत्ति का नाश होता है और मनुष्य हिंसात्मक क्रियाकलापों से दूर होता है। राष्ट्रवाद के उलट यह सदैव समग्रता पर विश्वास करता है नाकि नस्लीय एकता पर। यह देश की सीमाओं की भी नकार देता है यह एक ऐसे समाज की कल्पना करता जहाँ सभी के पास सब कुछ हो।

अंतिम पंक्तियों में मैं इतना ही कहना चाहूंगा कि राष्ट्रवाद जहाँ झूठे वादे और गुमराह एवं अंधेपन की राजनीति करता है वहीं उसके उलट मानवतावाद हमेशा शांत सद्भाव के साथ विश्व शान्ति का समर्थन करता है।

"शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं, हो निरूपाय। समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय"।

***

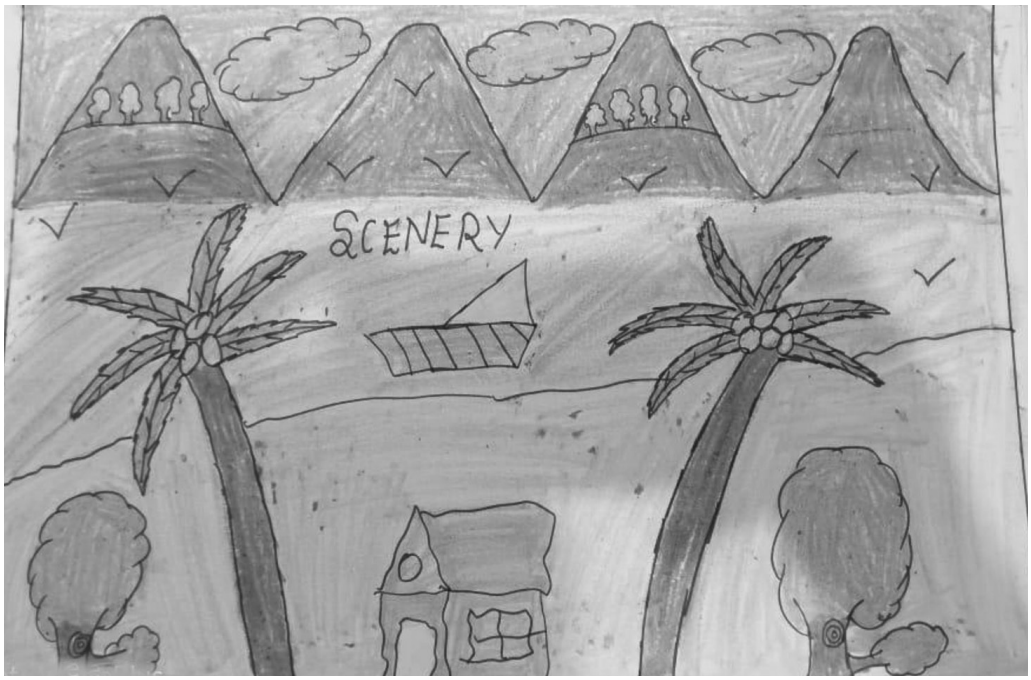

लेख

भाषा और धर्म का संबंध– 19वीं सदी के हिंदी-उर्दू विवाद के संदर्भ में

अभिषेक सौरभ

धर्म का प्रयोग सिर्फ व्रत-उपासना, नमाज-रोजे या दरगाहों पर चादर चढ़ाने तक कभी नहीं सीमित रहता बल्कि भौतिक जिंदगी में प्रतियोगिता की घड़ी में उसका सर्वाधिक कुटिल इस्तेमाल किया जाता है। जो उर्दू और हिंदी किसी हिंदुस्तानी जवान में ढ़लनी चाहिए थी उन्हीं को परस्पर कट्टर दुश्मन के रूप में ढाल दिया गया।

कहते हैं कि राष्ट्रवाद कभी इतना उदार व व्यापक नहीं होता कि सभी को अपना सके। जिस 19वीं सदी को भारत को आधुनिकता प्रदान करने की सदी माना जाता है, उसी सदी में धार्मिक समुदाय अपने लिए विचारक रेखाओं को चुन रहे थे और जिस पाकिस्तान को 20वीं सदी के मध्य में जन्म लेना था, उसके भ्रूण को 19वीं सदी के उत्तरार्ध में पाला जा रहा था।

कहा जाता है कि भाषा मुख्य रूप से सामाजिक संबंधों को निर्मित करने और उन्हें पहचान देने का काम करती है जबकि धर्म विशाल कल्पनाओं और मिथकों की आधार भूमि पर टिका होता है। 19वीं सदी में हिंदी-उर्दू भाषा का विवाद वह हथियार बनी जिसने पूरे समुदाय की उत्पीड़ित ग्रंथि (victim-complex) को पहले तो निर्मित किया और फिर उसका इस्तेमाल गोलबंदी और दबावकारी राजनीति के लिए करना शुरू कर दिया। 1876 में अवध के शिक्षा विभाग के निदेशक जे.सी. नेसफील्ड ने लि, – "मौलवियों और पंडितों के बीच की शत्रुता अजीबोगरीब थी। उन दोनों ने ही अपनी भाषा के शब्दों को लेकर जिद सी पकड़ ली जिसने निस्संदेह उर्दू और हिंदी के बीच की दूरी को और बढ़ाने का काम किया। उन्होंने यह झूठा प्रचार करने की भी कोशिश की कि उर्दू व हिंदी दो अलग-अलग जबाने हैं।" (हिंदी, नागरी एवं गोरक्षा)।

जाहिर है कि ब्रिटिश राज के ये अफसर खुद भी भोले व निष्पक्ष नहीं थे। भाषा के स्तर पर जब अलगाव बढ़ा तो उन्होंने पहले तो सावधानी से उनका जायजा लिया और फिर धार्मिक दरारों को चौड़ा करने के लिए इन भाषायी प्रतिनिधियों की माँगों के प्रति हमदर्दी जताने की आड़ में उनके टकराव को उकसाने का भी खेल खेला।

अमृत राय ने अपनी किताब 'ए हाउस डिवाइडेड' में इस ओर इशारा किया है कि जाने-अनजाने में हिंदी-उर्दू प्रेस ने भी, धर्म-मजहब के आधार पर ध्रुवीकरण को सहायता दी।

इस समय की वस्तुस्थिति का अवलोकन कर, पॉल ब्राश ने कहा– "19वीं सदी के आखिरी दशकों में और 20वीं सदी के शुरू में हिंदुस्तान के लोगों ने – हिंदुओं, मुसलमानों और अंगरेजों ने – जिन रास्तों का चुनाव किया, वे आखिरकार उन्हें हिंदुस्तान के बँटवारे तक ले गए।" (पृ. 251, हिंदी, नागरी और गोरक्षा)

हम इस पत्र में इस बात की तफ्तीश करेंगे कि किस प्रकार हिंदी और उर्दू जिसकी वाक्य रचना और व्याकरण का ढाँचा एक है, जिसका वर्तमान भले खंडित हो पर साझा अतीत है, धर्म की शरण लेकर हिंदू और मुस्लिम में बँट जाती है।

व्याकरण और बोलचाल को आधार बनाया जाए तो हिंदी और उर्दू को अलग-अलग भाषाएँ मानने वाला तर्क 6 वस्त हो जाता है। लेकिन, साहित्यिक स्तर पर देखा जाए तो दोनों भाषाओं के बीच अंतर काफी स्पष्ट रहे हैं। अलग-अलग लिपि में लिखे जाने के कारण भी इन्हें अलग-अलग भाषाओं का दर्जा दे दिया जाता है।

लेकिन साथ ही यह भी सच है कि परस्पर दो सदी तक लगातार टकराव के बावजूद भी, हिंदी और उर्दू के अलावा शायद ही दुनिया की कोई और भी भाषा हो जो इतनी गहराई और अंतरंगता से एक दूसरे से जुड़ी हुई हो।

प्रसिद्ध भाषाविद् अशोक केलकर ने इसके लिए 'हर्दू' शब्द का जिक्र किया है। जिस मध्यकालीन हिंदवी (पुरानी हिंदी) या हिंदुस्तानी भाषा से उर्दू और हिंदी दोनों का वजूद बना, उसकी हिमायत में मियां मुस्तफा ने सदियों पहले फरमाया था–

हिंदी को ना मारो ताना सभी बतायें हिंदी माना यह जो है कुरआन खुदा का

हिंदी करे बखान सदा का हिंदी मेंहदी ने फरमायी
खुदमीर के मुख पर आयी कई दोहरे, साखी,
बात बोले खोल मुबारक जान मियां मुस्तफा ने भी कही
और किसी की तब क्या रही?

इस प्रकार, हिंदवी-परंपरा भारत की साझा संस्कृति का

बेहतरीन नमूना है। इस साहित्यिक परंपरा ने अपने विकासक्रम में संस्कृत और फारसी के शब्दों को काफी सहज रूप से ग्रहण किया।

ब्रजभाषा भाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोय मिलै संस्कृत पारस्यो, पै अति सुगम जु होय।

किंतु 18वीं सदी से यह साझा परंपरा पतनोन्मुख होने लगी और गुजरी और दकनी का ढ़लान शुरू हुआ और उसका स्थान उर्दू ने लिया। ठीक इसी प्रकार 19वीं सदी में ब्रज और अवधी का स्थान लिया, आधुनिक हिंदी ने।

शुरुआती उर्दू के अत्यधिक फारसीकरण और उसके गढ़े एवं परिष्कृत साहित्य पर, 'आबे-हयात' में आजाद साहब ने अत्यधिक चुटकी ली। ठीक उसी प्रकार आधुनिक हिंदी भी और परिष्कृत होती हुई, संस्कृतनिष्ठ होती चली गई।

इस प्रकार एक ही उद्गम स्रोत से निकली हुई उर्दू और हिंदी दो अलग साहित्यिक रास्तों की ओर अग्रसर हुई। इस भाषायी विभाजन को धर्म और राजनीति ने और अधिक मजबूत किया। ब्रिटिश शासकों ने राजनीतिक लाभ के लिए भारत में हिंदुओं तथा मुसलमानों को अपना अस्तित्व अलग-अलग भाषाओं में ढूंढने के लिए प्रेरित किया।

भाषा को धर्म से जोड़ने का जो काम अंग्रेजों ने शुरू किया था, उसे आगे बढ़ाया आर्यसमाज तथा अलीगढ़ आंदोलन ने। आर्यसमाज के प्रवर्तक दयानंद सरस्वती ने हिंदी को एक नया नाम दिया 'आर्यभाषा' तथा इसे समस्त हिंदुओं की भाषा बताया और इन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी में लिखा। लेकिन एक दिलचस्प बात कि पंजाब में 'आर्य गजट' तथा उत्तर प्रदेश में 'आर्य पत्रिका' और 'आर्य समाचार' उर्दू भाषा के अखबार थे, जिनके माध्यम से आर्यभाषा का प्रचार हो रहा था। यानी कि धर्म और भाषा का समीकरण वास्तविक ना होकर महज किताबी था।

ठीक इसी प्रकार अलीगढ़ आंदोलन ने उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार सभी भारतीय मुसलमानों की और सिर्फ मुसलमानों की भाषा के रूप में किया।

लेकिन तत्कालीन ब्रिटिश शासकों, आर्य समाज और अलीगढ़ आंदोलनों की हर संभव कोशिशों के बावजूद न तो उर्दू मुसलमानों की और न हिंदी हिंदुओं की भाषा बन पाई। लेकिन इतना जरूर हुआ कि दोनों भाषाओं को अलग-अलग धार्मिक पहचान अवश्य मिल गई। इसका उपयाग 20वीं सदी में सांप्रदायिक राजनीति के तहत, भाषायी अस्मिता का प्रश्न बनाकर मुस्लिमलीग ने मुसलमानों के ध्रुवीकरण में किया। यही काम हिंदू महासभा ने हिंदी को लेकर किया।

भाषा को इस तरह धर्म से जोड़ने से दोनों भाषाओं का बहुत नुकसान भी हुआ और इनके बीच की खाई भी और चौड़ी होती चली गई। हालाँकि 1860 के आस-पास अकबर इलाहाबादी ने इसे बस एक पारिवारिक खटपट भर माना और इस हिंदी-उर्दू विवाद का मजाक भी उड़ाया—

हम उर्दू को अरबी क्यों न करें, हिंदी को वो भाषा क्यों न करें अखबार चलाने की खातिर मजमून तराशा क्यों न करें।

आपस में अदावत कुछ भी नहीं, पर एक अखाड़ा जारी है, जब इससे खल्क का दिल बहले हम लोग तमाशा क्यों न करें॥

यहाँ हम लोग' का अभिप्राय हिंदी और उर्दू दोनों ही कुनबों से था।

बज़्म की शब मैंने इस बुत से लड़ाई थी जबां, ये असर उसका हुआ, उर्दू से हिंदी लड़ गई॥

वैश्विक इस्लाम (Par gstam) का दम भरने वालों को लताड़ते हुए अकबर ने लिखा—

शेख जी तुमको मुबारक रूम ओ रय, हम तो कहते है। गाँधी जी की जय॥

इसी क्रम में, सारांशतः हम कह सकते हैं कि हिंदी-उर्दू विवाद को शुरू करने और शह देने में दो और महत्त्वपूर्ण कारक रहे, जिनमें एक फोर्ट विलियम कॉलेज में सर जान गिलक्राइस्ट द्वारा सर्व प्रथम हिंदी व उर्दू को अलग-अलग भाषा मानकर उनके लिए अलग-अलग तरीके से अध्ययन व लेखन तरीकों को प्रस्तावित करना भी रहा।

दूसरा सीरमपुर में इसाई मिशनरियों द्वारा 18वीं सदी के अंत में जब छापाखाना खोला गया, तब अक्षरों का टाइप तैयार करने के लिए उन्होंने जो मानकीकृत रूप तैयार किया जो हिंदी आम बोलचाल में निकट होते हुए भी उर्दू से लिखित में अलग था।

इन सब स्थितियों के साथ साथ उस समय जो अंग्रेजों की तुष्टिकरण की नीति मुस्लिमों के प्रति रही, उसने हिंदी-उर्दू के साथ-साथ दोनों धर्मों के सौहार्द पर भी चोट किया। दोनों तरफ के जो झंडाबरदार थे, एक-दूसरे पर और तेज से तेज हमलावर होते चले गए। दोनों तरफ के लोगों ने एक दूसरे की भाषा को निकृष्ट से निकृष्टतम कहने और साबित करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रखी थी। भाषाओं के साथ राजनीतिक उद्देश्यों के जुड़ने के कारण हिंदू और मुस्लिम दोनों की एक-दूसरे के प्रति कड़वाहट और बढ़ती ही जा रही थी। 19वीं सदी के मुसलमानों को बहुसंख्यक हिंदुओं के कारण अपना राजनीतिक अस्तित्व खोने का डर था। सैयद अहमद हिंदू-मुस्लिम एकता तो चाहते थे, पर पुराने शक्ति-समीकरण के तहत ही, जिसमें हिंदू भद्र वर्ग नीचे था। 19वीं सदी का मुस्लिम अलगाववाद

जनतांत्रिक माँगों के विरोध का नतीजा था। यह विरोध पुरानी राजनीतिक हैसियत और विशेषाधिकारों के सुरक्षा के लिए थी। इन्हीं परिस्थितियों में मुस्लिम भद्र वर्ग ने उर्दू को इस्लाम के साथ जोड़कर इसे अपनी धार्मिक अस्मिता का प्रतीक बनाया। हकीकत में उर्दू उनकी धार्मिक अस्मिता से कहीं ज्यादा उनकी भौतिक अस्मिता का, सरकारी नौकरियां पर उनके कब्जे का प्रतीक थी। यह वाकई बड़ी दिलचस्प बात थी कि जो उर्दू 18वीं सदी के उत्तरार्ध से पहले एक गैरइस्लामी जुबान समझी जाती थी, वह इस्लाम की प्रतीक बन गई। ठीक इसी प्रकार, पश्चिमोत्तर प्रांत में हिंदू भद्रवर्ग की अलगाव की भावना न सिर्फ हिंदी को संस्कृतनिष्ठ बनाकर उसे बोलचाल की जुबान से अलग और दूर करने के प्रयास में प्रकट हुई, बल्कि सीधे-सीधे मुस्लिम विरोध में भी प्रकट हुई। राजा शिवप्रसाद ने मुसलमानों का सिंधु पार करना भारतवासियों के लिए अभिशाप का दिन माना। 1885 में छपी किताब 'हिंदी और उर्दू की लड़ाई में उसके लेखक सोहनप्रसाद ने बहुत मासूमियत के साथ कहा कि धार्मिक-सामाजिक दृष्टि से हिंदू-मुसलमानों का एक दूसरे के नज़दीक आना उचित नहीं। जुलाई, 1881 में 'हिंदी प्रदीप' में बालकृष्ण भट्ट ने लिखा– "आर्यों के एकांत विरोधी मुसलमानों को अपना भाई समझना भूल है।"

हालाँकि ये सब मुस्लिम विरोधी बयान द्विज हिंदुओं के थे। शूद्र और दलित बहुत हद तक उनसे हिल मिल कर रहते थे।

हिंदू द्विज और मुसलमान भद्रवर्ग, इन दोनों धर्मों के मेल को धार्मिक पतन समझते थे। लेकिन, हिंदू-मुस्लिम शुद्धतावादियों को इसका एहसास नहीं था कि हिंदुस्तान में बसे 4635 समुदायों में से 35 हिंदू और इस्लाम दोनों को मानते हैं। 116 हिंदू और इसाई दोनों धर्मों को मानते हैं। 16 समुदाय ऐसे हैं जो हिंदू, इस्लाम और सिख तीनों को मानते हैं। जैन-हिंदू और बौद्ध हिंदुओं के बीच भी यही संबंध है। 94 ऐसे समुदाय हैं जिनकी इसाईयत और आदिवासी दोनों परंपरा रही है।

वास्तव में अपनी परस्पर हितों के संधान हेतु भद्रवर्गीय हिंदू-मुसलमान न सिर्फ आपस में अलगाव चाहते थे, बल्कि समाज के जिन तबकों में यह अलगाव नहीं था, उन्हें भी उघसीटकर अपने साथ गोलबंद करना चाहते थे। हिंदू भद्रवर्गों के सरकारी नौकरियों में ना जा पाने से चिंतित भारतेंदु की ही तरह भट्ट ने भी यह हिसाब लगाते हुए स्पष्ट लिखा कि– "आबादी के हिसाब से हिंदू मुसलमान से सात गुणा अधिक हैं, इसलिए सात बड़े ओहदों पर हिंदू हो जाने के इबाद तब एक मुसलमान होना वाजिब है।" इसी तरह से इन पदों पर काबिज होने हेतु मुस्लिम भी प्रयत्नशील थे। दोनों ही वर्ग को अपनी-अपनी कौम की चिंता सता रही थी और देशहित के ख्याल को मजहबी रंग में रंगने की कोशिश भी चल रही थीं। हिंदी-उर्दू टकराव भी इसी प्रक्रिया का अंग था क्योंकि टकराव से जो तर्क निकल कर जनमानस के भीतर प्रवेश कर रहे थे, सिर्फ भाषा नहीं बल्कि धार्मिक टकराव की गूंज लिए होते थे। मीर का एक शेर है–

उसके फ़रोगे हुस्न से झमके हैं सबमे नूर शम्शे हरम हो या कि दिया सोमनाथ का॥

एक ही ईश्वर की हर जगह मौजूदगी की बात जिस भाषा में कही गयी थी, उसी भाषा को आधार बनाकर है जो लड़ाइयां लड़ी गईं, उनमें भाईचारा नहीं बल्कि अपनी-अपनी धार्मिक संप्रदाय (कौम) के वर्गीय हितों का दबाव ज्यादा गहरा था। इसने धर्म यानी ईश्वर को भी भाषा से जोड़ दिया।

संदर्भ सूची

1. हिंदी-उर्दू : साझा संस्कृति (प्रकाशक - नवभारत टाइम्स) पृ. भूमिका, 9, 10, 11, 15, 32, 33, 55, 56, 60, 64-80)
2. रस्साकशी (वीर भारत तलवार), सारांश प्रकाशन (हिंदी, नागरी और गोरक्षा)

***

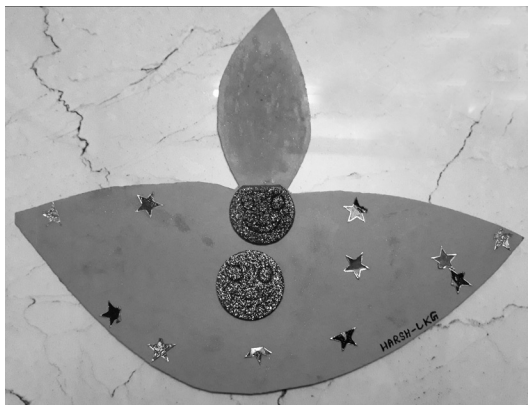

लेख

आधुनिक समाज में पुस्तकालयों की भूमिका

डॉ. सत्येन्द्र कुमार

आधुनिक समाज की अनेक आवश्यकताएं हैं- जैसे शिक्षा, अनुसंधान, सांस्कृतिक विकास, आध्यात्मिक एवं वैचारिक क्रियाकलाप, खेल एवं मनोरंजन, इत्यादि। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज ने अनेक संस्थानों की स्थापना की। इनमें पुस्तकालय का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। अन्य संस्थाएं एक या दो प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं लेकिन पुस्तकालय सभी प्रकार की आवश्यकताओं की समान रुप से पूर्ति करता है। समाज की शैक्षणिक एवं अनुसंधानपरक गतिविधियों के प्रोत्साहन, सांस्कृतिक विकास, सूचना के प्रचार-प्रसार, आध्यात्मिक और सैद्धांतिक आस्थाओं की पूर्ति, मानवीय मूल्यों की स्थापना और मनोरंजनात्मक कार्यों के आयोजन इत्यादि में पुस्तकालयों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

सभी कालों में समस्त मानवीय क्रियाकलापों के आयोजन एवं उनकी सफलता में ज्ञान और सूचना पर्याप्त सहायक रहे हैं। लेकिन बीसवीं सदी (शताब्दी) के उत्तरार्ध की अवधि में सूचना और ज्ञान विकास के सशक्त साधन और समस्त गतिविधियों के केन्द्र बन गए हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोगों के कारण ही सूचना का संग्रहरण, क्रियाकलाप और व्यवस्थापन, अभिगम तथा सुलभता भौगोलिक दूरियों के बावजूद भी सरल हो गये हैं और इन कार्यों को तीव्रता एवं सटीकता के साथ सम्पन्न किया जा रहा है। आज सूचना तथा ज्ञान को मूल संसाधन माना गया है और आधुनिक समाज को 'सूचना समाज' की संज्ञा दी गई है।

सूचना एवं ज्ञान की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयुक्त संस्थागत पद्यतियां एवं व्यवस्थाएं पूर्ण रुप से परिवर्तित हो गई हैं। ज्ञान और सूचना की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली अनेक संस्थाओं में पुस्तकालयों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

आधुनिक समाज में मानव की समस्त गतिविधियों का आयोजन संस्थाओं के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है। आज समस्त प्रमुख सामाजिक कार्यों एवं संगठनों का संस्थाकरण किया जा चुका है- चाहे वह आर्थिक कार्यक्रम हो या स्वास्थ्य-सेवा, शिक्षा हो या अनुसंधान, चाहे व्यवसाय हो या उद्योग। पर्यावरण की सुरक्षा अथवा प्रतिरक्षा की व्यवस्था को भी संस्थाओं एवं संगठनों के माध्यम से ही सम्पन्न किया जा रहा है। पुस्तकालय ऐसी संस्थायें है जो प्रलेखों में अभिलेखबद्ध सूचना, ज्ञान का संग्रहरण, भंडारण, प्रक्रियाकरण, व्यवस्थापन, वितरण तथा प्रसार करती हैं। क्योंकि - ज्ञान एवं सूचना मानव के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक होते हैं। अतः पुस्तकालय जो सूचना तथा ज्ञान की व्यवस्था तथा निष्पादन करती है महत्वपूर्ण होती हैं। इस लेख के अंतर्गत ज्ञानार्जन की औपचारिक एवं आध्यात्मिक शिक्षण प्रक्रियाओं, अनुसंधान एवं विकास, सांस्कृतिक क्रियाकलापों, आध्यात्मिक एवं विचारात्मक क्षेत्रों, मनोरंजन और उत्सव इत्यादि में पुस्तकालयों के योगदान और प्रभावशीलता का परिचय दिया गया है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के चमत्कारों और नित्यप्रति सूचना उपयोगकर्ताओं की श्रेणियों में वृद्धि के साथ ही साथ उनके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सूचना की मांग में वृद्धि के कारण, आधुनिक समाज, सूचना समाज की ओर अग्रसर हो रहा है। जिसमें परिवर्तन की मुख्यधारा और परिवर्तन की दिशा में सूचना और ज्ञान सशक्त उपकरण का कार्य कर रहे हैं। इस लेख में इन विचारधाराओं पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए पुस्तकालयों के योगदान के मूल्यांकन के लिए इन विचारधाराओं का आत्मसात (assimilate) करना अत्यावश्यक है। व्यावसायिक पद्धतियों, क्रियाकलापों और कार्यों की जानकारी के लिए इनसे पर्याप्त सहायता तथा परिज्ञान प्राप्त होता है।

आधुनिक समाज का सदस्य होने के कारण हम इनकी विभिन्न आवश्यकताओं से परिचित है। संभवतः शिक्षा इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह ऐसे शिक्षित, योग्य एवं दायित्वपूर्ण नागरिकों का निर्माण करता है जो प्रगति एवं विकास में अपना योगदान करने योग्य बन सकते हैं। समाज को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाना एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होता है, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए ऐसे क्रियाकलापों को सतत् रुप से प्रौद्योगिक विकास के माध्यम से कायम रखना है। जो अनुसंधान के द्वारा निष्पादित किये जाते हैं, और जिनसे हमें प्रचुर मात्रा में सूचना भी प्राप्त होती है। लेकिन मानव मात्र रोटियों पर ही निर्भर/जीवित नहीं रहता है। मानव में अनेक प्रगाढ़ एवं सूक्ष्म प्रवृत्तियां होती हैं, जैसे- आध्यात्मिक और वैचारिक प्रवृत्तियां, सांस्कृतिक एवं सौंदर्यशास्त्रीय प्रवृत्तियां इत्यादि जो मानव जीवन को सभ्य (सुसंस्कृत) और विकासशील बनाती हैं। अवकाश एवं विश्राम

की अवधि में मनुष्य को मनोरंजन की आवश्यकता होती है, यदि उसे रचनात्मक, प्रतिस्पर्धात्मक एवं प्रतियोगितात्मक गतिविधियों के लिए उपर्युक्त सुविधाएं एवं साधन उपलब्ध नहीं हो तो उसका ध्यान किसी नकारात्मक और विध्वंसात्मक दिशा में आकर्षित हो सकता है। जीवन का लक्ष्य समाज को विकसित करना है। जिससे सभ्य संस्कृत, सम्पन्न एवं पूर्ण जीवन व्यतीत किया जासके। यह लक्ष्य जीवन के ऐसे आवश्यक एवं सुनिश्चित मूल्यों पर जोर देता है जिनका परिपालन भी अनिवार्य हो। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक व्यवस्था करना समाज के सदस्यों का सामूहिक उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य है।

विभिन्न दायित्वों की पूर्ति के उद्देश्य से समाज ने बहुत पहले से ही अनेक संस्थाओं की स्थापना की है। हमारे पुस्तकालय भी इसी प्रकार की संस्थाएं है। लेकिन इस संस्थाओं में से प्रत्येक संस्था समाज की मात्र एक अथवा गिनी-चुनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए प्रयत्नशील होती हैं, जबकि पुस्तकालय सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता हैं। यदि आप किसी विश्वविद्यालय अथवा विद्यालय में छात्र हैं तो आपका मुख्य कार्य संबंधित स्तर का ज्ञान अर्जित करना है।

इसे शिक्षक के मौखिक सम्प्रेषण तथा कुछ निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन से ही सम्पन्न किया जाता है लेकिन पुस्तकालयों में अनेक विषयों एवं प्रकरणों से संबंधित ऐसी पुस्तकों का अवलोकन करने का अवसर प्राप्त होता है, जिनसे ज्ञान प्राप्त होता है, जो आपके आंतरिक सौन्दर्य बोध को जागृत करती है, जिनसे बुद्धि तीव्र होती है, जो मूल्यों को विकसित करती है। ज्ञानार्जन के कौशल को बढ़ाती है साथ में मनोरंजन इत्यादि भी प्रदान करती है। अतः समाज द्वारा स्थापित सभी प्रकार की संस्थाओं में से पुस्तकालय तथा इस प्रकार की अन्य संस्थाएं ही समकालीन समाज के उपयोग कर्ताओं की विविध प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सम्पूर्णतया सक्षम है।

पुस्तकालय पुस्तक-संग्रह के माध्यम से ज्ञान एवं सूचना के विशाल भण्डार का निर्माण करते हैं। सामाजिक प्रगति को सुनिश्चित करने वाले सभी मानवीय क्रियाकलापों की सफलता के लिए सूचना एक आवश्यक उपादान एवं संसाधन है। शोधार्थी, शिक्षक, छात्र, प्रशासक, औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रबंधक, शिल्पी, उदयमी, कृषक, कारखानों एवं खेतों-खलिहानों में काम करने वाले श्रमिक इत्यादि सभी को सूचना की आवश्यकता है, जिससे वे अपने व्यवसाय में सफलता पाने के लिए अपने को अत्यधिक सक्षम बना सकें। पुस्तकालय का प्रमुख सूचनात्मक योगदान, उपर्युक्त विधियों की सूचनाप्रद सामग्री का संग्रहण करना होता है इसलिए पुस्तकालय को सूचना केन्द्र की संज्ञा दी गई है। पुस्तकालय की सूचनात्मक भूमिका इसलिए भी होती है, कि लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकता के लिए भी सूचना की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति पुस्तकालय करता है। पुस्तकालय अपने पुस्तक संग्रह में रोजगार चयन से संबंधित पुस्तकें भी रख सकते हैं और इस प्रकार उन पाठकों की सहायता कर सकते हैं जो किसी विशेष क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करने के लिए इच्छुक हैं। किसी प्रकार के उद्यम को प्रारंभ करने के लिए किस प्रकार की जानकारी चाहिए, अथवा कोई रोजगार कैसे प्राप्त करें या कैसे प्रारंभ करें, इत्यादि की सूचनाप्रद सामग्री को भी पुस्तकालय सुलभ कराते हैं।

आधुनिक समाज में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों एवं क्षेत्रों में जो परिवर्तित हो रहे हैं वे विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में दिखाई देते हैः-

- जनसंख्या के विस्फोट का प्रभाव परिवर्तनों का एक मुख्य कारण है, विशेषकर भारत में यह शहरीकरण की प्रवृत्ति, जनसंख्या स्थानांतरण तथा सामूहिक गतिशीलता के माध्यम से एक विकट प्रभाव उत्पन्न कर रहा है।
- सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों से व्यावसायिक पद्धतियां, आय तथा इसके साधन, कीमतें, मानवीय मूल्य, मुद्रा-स्फीति, विकास की गतिशीलता, समष्टि एवं व्यष्टि स्तरों पर आर्थिक विकास इत्यादि अधिक प्रभावित होते हैं।
- राजनीतिक स्वरुप एवं प्रणालियों, राजनीतिक दलों एवं उनकी वृद्धि, सांसदों एवं विधायकों के क्रिया-कलाओं का सत्ता-संरचना को राजनीतिक परिवर्तन सर्वाधिक प्रभावित कर रहे हैं।
- शिक्षा के सभी स्तरों पर ज्ञानार्जन एवं शिक्षण-प्रक्रिया, ज्ञानार्जन एवं शिक्षण सामग्री और शैक्षणिक प्रौद्योगिकी को शैक्षणिक परिवर्तन पर्याप्त रुप से प्रभावित कर रहे हैं।
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी के क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास के फलस्वरुप उनमें उन्नयन, विस्तार, वितरण एवं प्रसार तथा उपयोग की दृष्टि से भी वृद्धि हुई है।
- उत्पादन एवं वितरण में होने वाले परिवर्तनों, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, मूल्यांकन एवं अनुप्रयोग, विपणन तथा विक्रय इत्यादि से व्यवसाय और वाणिज्य प्रभावित हुए हैं।
- व्यवसाय एवं वाणिज्य को आयात एवं निर्यात, अंतरराष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य बहुराष्ट्रीय व्यापार आदि ने प्रभावित किया है।
- नियोजन, नीति-निर्धारण, अभिशासन, क्रियान्वयन तथा

प्रबंध से शासन तथा प्रशासन व्यवस्था इत्यादि पर्याप्त प्रभावित हुए हैं।

- ललित कलाओं संगीत, प्रदर्शन, व्यवसाय, फिल्म उद्योग, उपग्रह टेलीविजन, सूचना प्रोद्योगिकी इत्यादि के क्षेत्र में सांस्कृतिक परिवर्तन उत्पन्न हो रहे हैं।

साहित्योन्मुख, प्रमुख, सामयिक क्रियाकलाप की विभिन्न गतिविधियों, कार्यक्रमों, परियोजनाओं इत्यादि के संचालन के लिए हमें इन्ही तीन श्रेणियों से सूचना को हासिल करना होगा तथा अपनी विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन्हें समुचित रीति से सम्मिश्रित, एकत्रित तथा एकीकृत करना होगा। सूचना के भण्डारण तथा पुनःप्राप्ति के लिए हमें इन्ही तीनों प्रमुख श्रेणियों से डेटाबेस तैयार करना होगा तथा इसके लिए सभी प्रक्रियाओं में व्यक्तिगत तथा सामूहिक रुप से सूचना प्रोद्योगिकी की एप्लीकेशन का भी सहारा लेना पड़ेगा।

उपयोगकर्ताओं की नवीन प्रकार की सूचना माँग की पूर्ति के लिए पिछले 30 वर्षों में अनेकों नयी गतिविधियाँ चलाई गयी हैं, जिन्हें अनेक क्रियाकलापों, साधनों एवं विधियों से सम्पन्न करना पड़ता है जो प्रलेखन, प्रलेखन सेवायें, सूचना विश्लेषण, सूचना के समेकन तथा पुनर्प्राप्ति (Retrieval), कम्प्यूटरीकृत प्रणालियों पर आधारित है। इन कार्य-क्षेत्रों में हो रही प्रगति के कारण सूचना-उत्पादों तथा सेवाओं की व्यवसायीकरण करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ है जिससे सूचना उद्योग का मार्ग प्रशस्त हुआ है जो तीव्र गति से नये रुपों में विकसित हो रहा है। पुस्तकालयों की इस तीव्रगामी भूमिका एवं परिवर्तनशील योगदान के आधार पर प्रसिद्ध सूचना वैज्ञानिक-रोबर्ट एस टेलर ने कहा है कि "रुपकात्मक भाषा में यह कहा जा सकता है कि हम टालमी कालीन (Ptolemaic) जगत, जिसमें पुस्तकालय केन्द्रभूत रहे हैं की ओर से कॉपरनिक्स कालीन (Copernican) जगत की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिसमें सूचना केन्द्रीभूत है और पुस्तकालय इसके अनेक ग्रहों में से एक है।" कहने का तात्पर्य यह है कि पुस्तकालय सूचना का केन्द्र माने जाते थे जिनके चारों ओर उपयोगकर्ता सूचना प्राप्त करने के लिए चक्कर लगाते थे, परन्तु अब सूचना ही केन्द्र है और पुस्तकालय सूचना के संग्रहण और प्रसार के लिए सूचना जगत की परिक्रमा करते हैं।

***

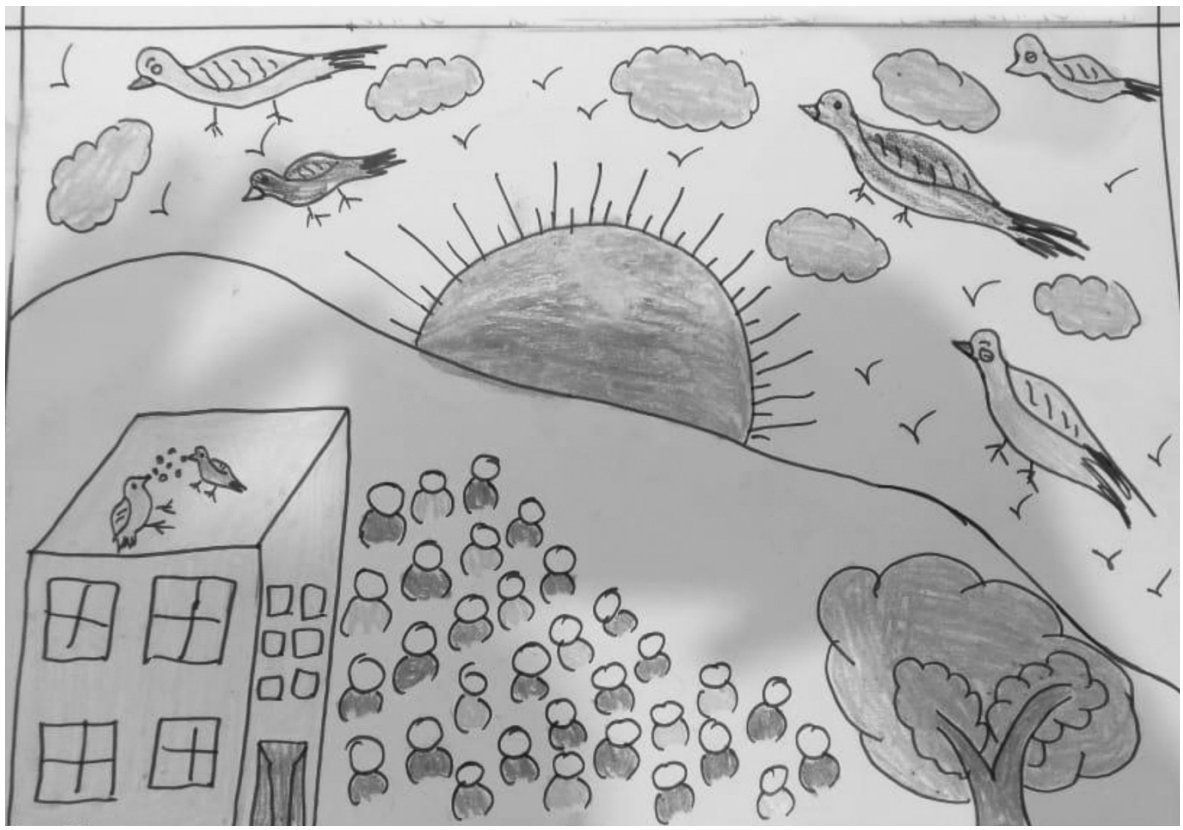

लेख

बहुसांस्कृतिक भारतीय समाज में अनुवाद की प्रासंगिकता

प्रियंका कुमारी

भौगोलिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता के कारण इस संसार का नागरिक परिदृश्य बहुभाषी है। इस बहुभाषिकता से बहुसांस्कृतिकता का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है, क्योंकि भाषा न केवल किसी समुदाय की भावाभिव्यक्ति की सहायक है, बल्कि उसकी संस्कृति की संरक्षणी भी। समाज के इतिहास, व्यवहार, मनोविज्ञान, परम्परा तथा लोकाचार की प्रकृति भी भाषा में देखी जा सकती है। ऐसे में किसी भी भाषा में संवाद, उसकी संस्कृति से संवाद होता है। यह संवाद प्रत्येक समाज में भाषा के शाब्दिक और अशाब्दिक स्वरुप द्वारा होता है। संवाद में भाषा के शाब्दिक स्वरुप का उपयोग सर्वाधिक किया जाता है। बहुसांस्कृतिक समाज में संवाद भाषा द्वारा होता है और इस संवाद की सबसे बड़ी समस्या भाषा ही होती है, क्योंकि प्रत्येक भाषा की अपनी अभिव्यक्ति शैली एक-दूसरे से भिन्न होती है। ऐसे में इस समस्या को अनुवाद द्वारा दूर किया जाता है। इसलिए अनुवाद को सभी प्रकार के बहुसांस्कृतिक संप्रेषण का माध्यम स्वीकार किया जा सकता है।

वर्तमान समय का मनुष्य वैश्विक समाज में जी रहा है। जहां संचार साधनों की सुविधा ने सांस्कृतिक विविधताओं के बावजूद इन्हें आपस में जोड़े रखा है। वैश्विक ग्राम की अवधारणा इस जुड़ाव से पुष्ट हुई है। स्पष्टतः वैश्विक ग्राम के आपसी जुड़ाव ने सांस्कृतिक संचार की आवश्यकता बढ़ा दी है। इस दौर में सूचना का प्रवाह भी बढ़ा है। यह प्रवाह विभिन्न संस्कृतियों द्वारा प्रवाहित है। इसलिए संवाद हेतु संप्रेषण के सभी तत्त्वों की गहन समझ आवश्यक है। इन सभी सांस्कृतिक सूचनाओं या संवादों को अनुवाद द्वारा बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। इस सांस्कृतिक विविधता में अनुवाद ने संप्रेषण के माध्यम की भूमिका निभाई है। इसके द्वारा सांस्कृतिक भिन्नता के बावजूद व्यापार, कला, ज्ञान, शिक्षा, सूचना, अर्थजगत, राजनीति, तकनीकी एवं अन्य विषयों पर बातचीत जारी है। वैश्विक युग में सांस्कृतिक संवाद की मांग बढ़ने से अनुवाद द्वारा उसकी पूर्ति भी बढ़ी है। अनुवाद का उपयोग आज से नहीं हो रहा है। 'वस्तु एवं विचार के विनिमय हेतु मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही अनुवाद का प्रयोजन होने लगा था (देवशंकर नवीन 2016)।' हमारे पूर्वज दूसरे देशों के साथ संवाद, व्यापार, ज्ञान तथा धर्म प्रचार के लिए एक-दूसरे से संपर्क करते थे। इस संपर्क के लिए वे अनुवाद का सहयोग लेते थे। तब से आज तक बहुभाषी समाज के बीच संवाद के कार्य में अनुवाद का उपयोग होता आ रहा है।

शुरूआती संचार के क्रमिक दस्तावेज न होने के कारण अनुवाद के आरंभ की तिथि का स्पष्ट पता नहीं चलता। लेकिन उपस्थित अनुवाद के साक्ष्य को देखने से स्पष्ट होता है कि अनुवाद का उपयोग प्राचीन काल से हो रहा था। यह उपयोग धर्म, व्यापार, विचार, ज्ञान-विज्ञान के लिए अधिक किया जा रहा था। इससे लोग एक-दूसरे से संबंध स्थापित कर रहे थे। अनुवाद ने सदैव ही विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, और मानव विज्ञान से संबंधित ज्ञान को एक समाज से दूसरे समाज तक पहुंचाया है, जो मानव इतिहास के क्रांति विकास के लिए महत्त्वपूर्ण रहा है। इसलिए विभिन्न सभ्यताओं के इतिहास, कला, साहित्य, संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान आज बचे हुए हैं, वरन ये कब के समाप्त हो जाते। तोलेदो, बगदाद, तक्षशिला, नालंदा के साहित्य धरोहर तथा बाईबिल, कुरान, गीता, रामायण-महाभारत, कालिदास, शेक्सपियर, वड्र्सवर्थ, सुकरात, डार्विन, न्यूटन, मार्क्स, रामानुजन, आर्यभट्ट तथा रविंद्रनाथ टैगोर के रचना इत्यादि का प्रसार इसके उदाहरण हैं। मुद्रण तकनीकी के विकास ने अनुवाद द्वारा विभिन्न ज्ञान-विज्ञान की बातों को और गति प्रदान की थी। जिससे आज विश्व पटल पर विभिन्न प्राचीन साहित्यों को सभी जानते हैं।

भारत में भी अनुवाद द्वारा साहित्य, संस्कृति, कला, ज्ञान-विज्ञान, धर्म-दर्शन और विचार के कार्य होते आए हैं। भारत अपनी सभ्यता के प्रारंभ से ही विभिन्न संस्कृति, धर्म, भाषा, जाति, वर्ग, नस्ल एवं विचारों वाला देश रहा है। जिस कारण यहां बहुसांस्कृतिकता, बहुजातीयता, बहुभाषिकता, बहुधर्मिता एवं बहुदार्शनिकता पाई जाती है। आज भी यहां 22 संवैधानिक भाषाएं तथा 15 हजार बोलियां हैं। इस भाषिक विविधता में अनुवाद द्वारा ही संवाद किया जाता है। अनुवाद के इस सहयोग से भारत एक राष्ट्र के रूप में जुड़ा रहता है। उसकी भाषाएं और क्षेत्रीय संस्कृति एक-दूसरे के करीब आती हैं। भारतीय एकीकरण, संस्कृति, ज्ञान, दर्शन, अवधारणा तथा विचार आदि

भी निर्मित होते हैं। भारत में अनुवाद का उपयोग आज से नहीं हो रहा है। यह भारतीय सभ्यता के आरंभ से जारी है। इसकी उपस्थिति के इतिहास का दस्तावेजीकरण यहां पश्चिम की तरह उपलब्ध नहीं है। फिर भी अनुकथन, अनुवचन, पुनर्कथन, श्रुति, भाष्य, टीका, अन्वय, विश्लेषण, व्याख्या जैसे साक्ष्यों के रूपों में यह भारतीय सभ्यता में उपस्थित है। भारत पर लगातार कई बाहरी आक्रमण हुए हैं। मुग़ल, अरब, तुर्क, पुर्तगाल, फ्रांस, डच तथा अंगेजों का कई वर्षों तक शासन रहा है। इस कारण भी यहां अनुवाद का उपयोग संवाद के लिए हुआ।

'भारतीय अनुवाद उद्यम की इस अत्यन्त् प्राचीन परम्परा का सघन उपयोग उपनिषद काल से ही ज्ञानदान एवं समाज-व्यवस्था के संचालन हेतु होता आया है। भाष्य, टीका, विश्लेषण, व्याख्या, अनुवचन, अनुकथन... तमाम विधियों से भारतीय चिन्तक ज्ञान, धर्म, और विचार की अभिव्यक्ति करते आए हैं। भारतीय ज्ञान के ध्वजधारीगण अपने-अपने समय के नागरिकों के भाषा-ज्ञान और ग्रहण-शक्ति के अनुकूल सरल भाषा में शास्त्र-पुराणों का पुनर्कथन या आत्मसातीकरण (एप्रोप्रिएशन) करते रहे हैं। रामचरितमानस या कि विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित रामकथाओं, कृष्णकथाओं के पुनर्कथन में अनुवाद का यह उद्यम देखा जा सकता है (देव शंकर नवीन 2016)। भारत में अनुवाद के शुरुआत में पद-पाठ में संहिताबद्ध वेदों के मन्त्रों के पदों को अलग-अलग करके के संधिविच्छेद, उपसर्ग तथा उदंतादी स्वरों का वर्ण करके संवाद किया जाता था। निरुक्त का प्रयोग करके किसी शब्द का एक धातु या अनेक धातुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित कर उसका अर्थ बताया जाता था। वेदों के भाष्य द्वारा ब्राह्मण तथा अन्य ग्रंथो में इनका सरलीकारण करके संवाद किया जाता था। यास्क के बाद बहुत से भाष्यकार हुए परन्तु उनके भाष्य आज उपलब्ध नहीं हैं। सातवीं सदी के स्कन्दस्वामी, नारायण, उद्गीन, माधव भट्ट, वेंकेटमाधव आदि ने ऋग्वेद का भाष्य किया है। ये भाष्य साधारण जनता के क्लिष्ट संस्कृति के समझ की असमर्थता को ध्यान में रखते हुए किया गया था। भाष्य, निरुक्ति, टीका साहित्य का सरलीकरण करके विचारों को संप्रेषित करते थे। इससे आम जनता में वेदों के विचारों का प्रसार हुआ। प्राचीन भारत में संस्कृत राजसत्ता की भाषा थी और आम जनता पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में संवाद करती थी। राजा और प्रजा के बीच संवाद के लिए अनुवाद का उपयोग किया जाता था। इससे संस्कृत के साहित्य और धर्म संबंधित बातों को अनुवाद द्वारा पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में समझा जाता। इस बात को संस्कृत नाटकों के पाठ को देखा जाए तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि संस्कृत नाटकों के नायक संस्कृत में संवाद करते हैं, जबकि स्त्री, सेवक और छोटी जातियां प्राकृत एवं सूरसेनी जैसी बोलियों में। भाषा की यह भिन्नता स्पष्ट करती है कि प्राचीन भारत में अनुवाद के द्वारा संवाद हो रहे थे। भाषाई विविधिता में अनुवाद की उपयोगिता को बताते हुए भारतीय साहित्य के इतिहास में शिशिर कुमार दास (1991) कहते हैं कि 'भाषाई विभिन्नता के बावजूद कालिदास के संस्कृत में लिखे अभिज्ञान शाकुंतलम का अनुवाद सौरसेनी, मराठी और मगधी में हुआ और अनुवाद ने बहुभाषी समाज को तोड़ा नहीं, बल्कि एक-दूसरे से संवाद के लिए उत्साहित किया था।'

धीरे-धीरे संस्कृत का प्रभाव कम होने लगा। इससे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश का अधिक उपयोग किया जाने लगा। इस समय विभिन्न प्रकार के आक्रमणों ने भारत में और भी अधिक सांस्कृतिक तथा भाषिक प्रभाव डाले। 11वीं से 15वीं शताब्दी में आधुनिक भारतीय भाषाओं (असमी, मराठी, कन्नड़, तेलगु इत्यादि) के विकास से संस्कृत, पाली, प्राकृत के तकनीकी, धार्मिक पाठों को विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कर संरक्षित किया जा रहा था। इसका उदहारण उस समय के सभी भाषाओं में रामायण और महाभारत के अनुवाद और रूपांतरण को देखने से मिलता है। ठीक उसी समय फ़ारसी भाषा में अनुवाद का कार्य शुरू हुआ। सल्तनत काल में फारसी प्रभावशाली भाषा बन गई थी। फ़ारसी द्वारा कोर्ट, कचहरी तथा शासन के कार्य होने लगे। अकबर ने धर्म और अंतरसांस्कृतिक निष्ठा को बढ़ाने के लिए संस्कृत, अरबी और तुर्की पाठों के अनुवाद फ़ारसी में कराने के लिए अनुवाद एजेंसी की स्थापना की थी। इसके अंतर्गत रामायण, महाभारत, गीता, भगवत गीता, पुराण, अथर्ववेद, योग वैशिष्ट्य आदि के अनुवाद फ़ारसी में कराए गए। 'इस समय में किये गए अनुवाद को सभ्यताओं से संवाद के रूप में चित्रित किया जा सकता है (एम. असादुद्दीन 2006)।' दारा शिकोह ने 15 उपनिषदों का अनुवाद संस्कृत से फ़ारसी भाषा में करवाए, ताकि वह हिन्दू और इस्लाम धर्म को तुलनात्मक रूप से समझ सके। दारा शिकोह के अनुवाद पाठ आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा सामाजिक भी थे। हिंदी और फारसी लोगों के बीच संवाद के लिए आमिर खुसरों ने फ़ारसी-हिंदी कोश की रचना की थी। इस समय के अनुवाद से विभिन्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण लाभ हुए। सर्वप्रथम इससे लोग द्विभाषी हुए। अब ज्यादातर लोग दो भाषाओं को जानने लगे या इससे भी ज्यादा भाषाओं को। दूसरा, इससे उर्दू जैसी नई भाषा का जन्म हुआ, जो फ़ारसी के साथ स्थानीय भाषाओं के संपर्क के द्वारा विकसित हुई थी। तीसरा, अनुवाद के उपयोग से भारत में नई शैलियों का विकास हुआ। जैसे फ़ारसी अनुवाद से मसनवी, क़सीदा और ग़ज़ल का विकास हुआ। इसके द्वारा फ़ारसी विधाओं का

भारतीयकरण किया गया। मिर्ज़ा ग़ालिब अपने ग़ज़ल को फ़ारसी और उर्दू में लिखते थे तथा विभिन्न प्रकार के भारतीय ग्रंथ अनूदित हो कर फ़ारसी में गए। इन सभी ग्रंथों के अनुवाद का एकदम सटीक दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। परंतु कुछ उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर बिना हिचकिचाये कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाने में इन अनुवाद ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

भारत में 15वीं शताब्दी में मुद्रण तकनीकी की स्थापना ने अनुवाद में गति प्रदान की। इन मुद्रण प्रेस की स्थापना द्वारा सर्वप्रथम धर्म के प्रचार के कार्य किए गए थे। जान गोंसोल्वेस ने इसाई धर्म के प्रचार के लिए तमिल भाषा में टाइप बनवाए। इसके उपरांत 'टमपरियन वणक्कम' किताब संत फ्रांसिस जेवियर द्वारा तमिल भाषा में अनूदित की गयी थी। इस किताब में प्रार्थना और कैथोलिक निर्देश थे, जो अनुवाद द्वारा इसाई धर्म का प्रचार कर रहे थे। देवनागरी टाइप में हिन्दूपुराण की तरह क्राईस्ट पुराण का अनुवाद करके इसाई धर्म का प्रचार किया जा रहा था। पुर्तगालियों ने भारतीयों से संप्रेषण के लिए पुर्तगाली-कोंकणी तथा कोंकणी-पुर्तगाली कोश का निर्माण किया था। आत्मा राम सेठी ने सन् 1875 से 1975 तक भारत में एक हजार विदेशी भाषा से हिंदी में अनूदित साहित्य की सूची तैयार की है, जो इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि भारत में भी मुद्रण तकनीकी के विकास के साथ अनुवाद द्वारा अपने साहित्य को समृद्ध किया जा रहा था।

अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत में अनुवाद कार्य ज्ञान की खोज के लिए किए जा रहे थे। लोग ज्ञान की समृद्धि को बढ़ावा देने के लिए अनुवाद कार्य पूरे लगन से कर रहे थे। भारत पर शासन करने के दृष्टिकोण से अंग्रेजों ने भारत में अनुवाद द्वारा ज्ञान विस्तार के उद्देश्य को भ्रष्ट कर दिया। लार्ड मैकाले द्वारा कहा गया कि यूरोपीय भाषा अरब और भारतीय भाषाओं से ज्यादा समृद्ध है। यहीं से प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली को तोड़ कर अंग्रेजीकरण किया गया। ब्रिटिश शासकों ने भारतीय ज्ञान का अनुवाद कर अपनी भाषा को ज्ञान से समृद्ध किया और अनुवाद माध्यम से भारतीय जनमानस को पूरे विश्वपटल पर सांप, बिच्छुओं वाला पिछड़ा और असभ्य देश के रूप में दिखाया। अंग्रेजी उपनिवेशिक भारत में प्रभावशाली भाषा बन गई थी। 'सन् 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना उत्तर भारतीय भाषाओं के लिए एक बड़ी घटना थी; (एम. असादुद्दीन 2006)।' इस कॉलेज द्वारा ईस्ट इण्डिया कंपनी में कार्य करने वाले लोगों को भारतीय भाषाओं का ज्ञान दिया जा रहा था। इसमें हिन्दुस्तानी भाषाओं द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। फोर्ट विलियम्स कालेज की स्थापना के साथ ही किस्सा, चाहर दार्विश, दास्तान अमीर हमजा, सिंहासन बत्तीसी इत्यादि का अनुवाद किया गया। संस्कृत, अरबिक, फारसी, बांग्ला, हिंदी, उर्दू आदि भाषाओं की हजारों किताबों को अंगेजी में अनूदित कर भारतीयों के स्वाभिमान को तोड़ना शुरू कर दिया गया था। इन अनुवादों ने अंगेजों को भारतीयों के विषय में एक गहरी समझ दी। इससे भारत पर शासन करना आसान हो गया। विलियम जोन्स ने अभिज्ञानशाकुन्तल और चाल्स विल्किंस ने भगवत गीता का अनुवाद अंग्रेजी में सर्वप्रथम किया। प्रथम विश्व युद्ध के समय बड़े स्तर पर अंग्रेजी किताबों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में हुआ। धीरे-धीरे अंग्रेजी भारत में सत्ता की भाषा बन गई। अनुवाद का उपयोग इस प्रभाव के लिए किया जाने लगा कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य भारतीय भाषा और साहित्य से सर्वश्रेष्ठ है। इस समय अत्यधिक मात्रा में अंग्रेजी साहित्य को भारतीय भाषाओं में अनूदित किया गया। इसके द्वारा अंग्रेजी साहित्य को भारत में बढ़ावा मिला। इसी समय बाइबिल का बहुत सी भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया गया। बाइबिल का यह अनुवाद भारतीय भाषाओं में सरल स्वरुप में होता था। अंग्रेजों ने स्थानीय भाषाओं में व्याकरण और व्यवस्थित शब्दकोशों विकसित कर योगदान दिया। अधिकांश भारतीय भाषाओं में पहला शब्दकोश संकलित करने का श्रेय कुछ यूरोपीय या दूसरे देश के विद्वानों को जाता है। बाइबिल के अनुवादों द्वारा भारत में आधुनिक अनुवाद करने के पद्धति स्थापित हुई।

धीरे-धीरे भारतीयों द्वारा ब्रिटिश शासन के सामने अपने सारे हथियार डाल दिए गए। ब्रिटिश संस्कृति की आधुनिकता जो भारतीयों से चुराई गयी थी; उन्हें ब्रिटिश शासक अनुवाद द्वारा अपना दिखा कर भारतीयों के साथ गुलामों वाला संवाद कर रहे थे। वे अंग्रेजी भाषा और संस्कृति को लगातार भारतीय भाषाओं से सर्वश्रेष्ठ दिखा रहे थे। इससे वर्नाकुलर भाषाओं और अंग्रेजी भाषा के बीच संघर्ष भी हो रहा था। फिर भी बहुत से लोग थे जो ज्ञान के सभी ग्रंथो का अनुवाद कर भारतीय जनमानस को जगाने का प्रयास कर रहे थे। वे अंग्रेजी के ग्रंथो का अनुवाद कर जनता से संवाद कर रहे थे कि पिछड़े हम नहीं, अंगेजी शासन है। इस क्षेत्र में राजा राममोहन राय ने अपने अंग्रेजी, हिंदी, संस्कृत, पर्शियन, अरबिक ज्ञान का प्रयोग भारतीयों के अज्ञानता को दूर करने के लिए किया। वे उपनिषद और वेदांत का अनुवाद हिंदी, अंगेजी और बांग्ला में कर भारतीयों से संवाद कर रहे थे। उन्होंने मूर्ति पूजा और सती प्रथा का विरोध किया और सभी धर्मों को एकेश्वरवाद के उपदेश मानने के सन्देश दिए। उन्होंने वेदांत के सूत्रों का विस्तृत सारांश हिंदी और बांग्ला में अनूदित कर बताया कि ईश्वर की

सबसे बड़ी पूजा ज्ञान द्वारा होती है। राममोहन राय हिदू धर्म ग्रंथो का अनुवाद कर बांग्ला भाषा को समृद्ध कर रहे थे तो वहीं बुराइयों की आलोचना भी अनुवाद द्वारा कर रहे थे। जहां एक ओर राजा राममोहन राय थे, तो दूसरी ओर देश की स्थिति सुधारने के लिए अनुवाद का प्रयोग भारतेंदु हरिश्चंद्र कर रहे थे। उन्होंने बांग्ला नाटक 'विद्यासुन्दरम' का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ब्रिटिश शासन के गुलामी से अपने देश के लोगों को छुटकारा दिलाने के लिए सभी भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथो का अनुवाद करने का आह्वान किया। इसके पीछे उद्देश्य था कि लोग अपनी भाषाओं में अनुवाद द्वारा विभिन्न भाषाओं के ज्ञान को प्राप्त करेंगे और विदेशी आक्रमणकारियों की सारी राजनीति समझ पाएंगे। अनुवाद द्वारा हमें अपने धर्म की पहचान होगी और विवेक को जागृत कर हम आत्मनिर्भर होंगे; जिससे अंग्रेजों की गुलामी से स्वतंत्र हो जाएंगे। इसलिए उन्होंने 'द मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' नाम से किया। भारतेंदु ने अनुवाद को सामाजिक अनुवाद का हथियार मान कर कर्पूर मंजरी, मुद्रा राक्षस, भारत जननी, धनंजय विजय आदि कई रचनाओं के हिंदी में अनुवाद किए। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी भाषा की समृद्धि तथा शोक में डूबे देश को जागृत करने के लिए 14 महत्वपूर्ण रचनाओं का अनुवाद हिंदी भाषा में किया था। हर्बर्ट स्पेंसर की एजुकेशन तथा जॉन स्टुअर्ट मिल की रचना ऑन लिबर्टी का अनुवाद शिक्षा और स्वाधीनता नाम से किया। इन दोनों अनुवाद से टूट चुके भारतीय जनमानस में उर्जा आयी और उन्हें ब्रिटिश शासन के पिछड़ेपन का ज्ञान हुआ। इन दोनों ग्रथों के अनुवादों ने भारतीयों को ब्रिटिश शासन काल से लड़ने के लिए प्रेरित किया। रामचंद्र शुक्ल ने जर्मन कृति के अंग्रेजी अनुवाद 'द रिडल्स ऑफ यूनिवर्सल' का अनुवाद विश्व प्रपंच शीर्षक से किया। प्राणीविज्ञान की इस अनूदित रचना का हिंदी में विशेष महत्व इसलिए था क्योंकि इसने बिना वैज्ञानिक हिंदी कोश के हिंदी को ग्रन्थ दिया, जिससे हिंदी भाषी लोगों के ज्ञान का विस्तार हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले बांग्ला और हिंदी में अधिक अनुवाद हुए क्योंकि बंगाल हिंदी और बांग्ला पत्रकारिता का गढ़ था। अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हो रहे थे। लोगों द्वारा भाषायी समाचार पत्रों में अनुवाद द्वारा संवाद कर रहे थे। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट भारतीय समाचार पत्रों पर लगाए। भारतीय संवाद पद्धति को अनुवाद ने निरंतर गति प्रदान की।

ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीय अनुवाद कार्य को अनुवाद की राजनीति ने बर्बाद कर दिया; जिससे भारत इतिहासविहीन, संस्कृति और परम्परा की समृद्ध को खो दिया। इससे भारतीयों पर ऐसा असर पड़ा कि उन्होंने अपने यहाँ के समृद्ध ज्ञान परम्परा को भूला दिया और ब्रिटिश शासन द्वारा बताए ज्ञान को स्वीकार कर लिया है। ब्रिटिश अनुवाद की राजनीति का आज भी उतना ही असर है। इसलिए भारतीय भाषाओं में स्वतंत्रता के बाद खाई और भी बढ़ती चली गयी। आज भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी अनुवाद पर ज्यादा जोर है और आपसी संवाद नाम मात्र के हो रहे हैं। सरकार की त्रिभाषा नीति भी कारगर साबित नहीं हुई। समाचार एजेंसियों में अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद हो रहे हैं। भारत में आज भी ब्रिटिश शासन के असर अनुवाद द्वारा संवाद पर दिखाई पड़ता है। अंग्रेजी में अनुवाद आज भी भारतीय भाषाओं में अनुवाद पर भारी पड़ रही है। भारतीय भाषाएं आज भी अंग्रेजी के चुंगल से अपने आप को बचा नहीं पायी हैं।

आज भारतीय भाषा परिदृश्य पर भूमंडलीकरण का प्रभाव है। भूमंडलीकरण ने संवाद के लिए विभिन्न भाषाओं में तेजी से अनुवाद कर सवांद करने को मजबूर किया है। भारत विश्व का सबसे बड़ा बाज़ार भी बन गया है। यहां संवाद अंग्रेजी वाया अन्य भाषाओं से हो रहे हैं, जिससे भारतीय भाषा और बोलियों की परम्परा संस्कृति खतरे में हैं। अंग्रेजी से हिंदी या अन्य भाषाओं में अनुवाद उच्च स्तर के नहीं हैं, जिससे पाठक अंग्रेजी में पढ़ना अधिक सुविधा जनक समझता है। भारत में अनुवाद तो तेजी से हो तो रहे हैं, अधिकतर अनुवाद ज्ञान की जगह धन कमाने और काम चलाने भर के हैं। जिससे अनुवाद का स्तर सतही होता चला जा रहा है। भारतीय भाषाओं के आपसी अनुवाद की रफ़्तार बहुत धीमी है और न ही उन्हें प्रोत्साहित किया जा रहा है। वर्तमान समय में ऐसी अनुवाद की संस्थाएं नहीं हैं, जो भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद का प्राशिक्षण ज्ञान के विस्तार के लिए दे सकें। ज्ञान आयोग ने अनुवाद की आवश्यकता बताई तो है, परन्तु प्राथमिक स्तर पर अंग्रेजी की अनिवार्यता भी निश्चित की है। आज भारतीय भाषाएं जो कि अपने आप में क्लासिक साहित्य हैं, अनूदित न होने के कारण भारत में ज्ञान के संचार को कुंद कर रही हैं। फिर भी भारतीय भाषाओं में अनुवाद द्वारा संवाद हो रहे हैं। यह भारत के बहुभाषिक परिदृश्य में संवाद के लिए आवश्यक है।

***

तुर्की में हिंदी और अंग्रेजी

गंगा सहाय मीणा

फिलहाल तुर्की के अंकारा विश्वविद्यालय के इंडोलॉजी विभाग में हिंदी पढ़ाता हूँ। यहाँ चूंकि मूल पाठ्यक्रम इंडोलॉजी का है, इसलिए विद्यार्थियों को हिंदी के रूप में केवल भाषा पढाई जाती है, साहित्य नहीं। पूरे तुर्की में हिंदी का स्वतंत्र पाठ्यक्रम कहीं नहीं है। दो-तीन जगहों पर यही इंडोलॉजी है जिसमें मुख्यतः संस्कृत भाषा-साहित्य, कुछ पालि साहित्य, हिंदू और बौद्ध धर्म-दर्शन, भारत का इतिहास आदि पढ़ाया जाता है। इतने विशाल और विविधतापूर्ण पाठ्यक्रम के साथ विदेशी भाषा के रूप में हिंदी को पढ़ना जाहिर है विद्यार्थियों के लिए बहुत चुनौतीपूर्ण होता है। दूसरे, ज्यादातर विद्यार्थी पढ़ाई के साथ आजीविका के लिए कुछ न कुछ काम भी करते हैं, इसलिए भाषा सीखने के लिए अपेक्षित समय नहीं दे पाते। फिर भी कुछ विद्यार्थी पूरी लगन से हिंदी सीखते हैं। आइए, ऐसे ही एक विद्यार्थी की एक उलझन से परिचित कराता हूं। एक रात लगभग एक बजे अपने एक विद्यार्थी का वॉइस मैसेज आया कि 'अध्यापक जी, बहुत परेशान हूं। अभी मेरी एक भारतीय लड़की से एक घंटे बहस हुई है। वह कहती है कि मेरी हिंदी व्यावहारिक नहीं है। अध्यापक जी, मैं हिंदी सीखने के लिए बहुत परिश्रम कर रहा हूं। मैं क्या करूं जिससे मैं भारतीयों जैसी हिंदी सीख सकूं!' भारत में मुझे कभी पढ़ाई को लेकर ऐसा मैसेज नहीं मिला। यहाँ विद्यार्थी सच में बहुत मेहनती है। यह शायद पूरे इंडोलॉजी का सबसे अच्छा विद्यार्थी है। यह अभी जूनियर है लेकिन बहुत तेजी से हिंदी सीख रहा है। हिंदी व्याकरण तो जानता ही है। रोजाना दर्जनों नए शब्द सीखता है। उनका वाक्यों में प्रयोग करता है। फिर भी वह अपनी प्रगति से संतुष्ट नहीं है क्योंकि उसके भारतीय मित्र (जिनसे वह सोशल मीडिया पर बात करता है) उसकी हिंदी को अव्यावहारिक बताते हैं। उसकी हिंदी में सबसे बड़ी 'अव्यावहारिकता' यह है कि वह हिंदी में भारतीयों की तरह धड़ल्ले से अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग नहीं करता। वह क्या, तुर्की का कोई भी हिंदी विद्यार्थी या अध्यापक हिंदी में अंग्रेजी की मिलावट के पक्ष में नहीं है। एक दिन की बात बताता हूँ। स्वयं हमारे विभागाध्यक्ष को मैंने अभिवादन किया। अभिवादनस्वरूप मैंने उन्हें 'सर' कहकर संबोधित किया। उन्होंने कहा कि हिंदी में क्या सहयोगी वरिष्ठ अध्यापक के लिए कोई शब्द नहीं है कि आप एक अंग्रेजी शब्द का प्रयोग कर रहे हैं! दरअसल तुर्की भाषा में अध्यापक को 'होजा' कहते हैं और विद्यार्थी अध्यापकों को 'होजाम' कहकर संबोधित करते हैं, जिसका आशय होता है मेरे अध्यापक। खैर, उस दिन मैंने कहा कि हम तो भारत में सामान्यतः सर और मैडम शब्द का ही प्रयोग करते हैं। कुछ लोग गुरूजी शब्द का भी प्रयोग करते हैं। पहले 'आचार्य' शब्द प्रयुक्त होता था, जो कुछ विश्वविद्यालयों में अभी तक जारी है। इस तरह मैंने उनको भारतीय विश्वविद्यालयों में अध्यापक के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों के बारे में बताया। उन शब्दों में से उन्हें 'आचार्य' शब्द उपयुक्त लगा और मुझे 'होजाम'।

उस दिन उन्होंने मेरे समक्ष हिंदी में अंग्रेजी शब्दों के बढ़ते प्रयोग पर चिंता जताई।

तुर्की की सार्वजनिक दुनिया के ऐसे कई अनुभव मेरे पास हैं जिससे पता चला कि तुर्कीभाषी लोग भाषा में मिलावट को पसंद नहीं करते। यह मेरे लिए बहुत दिलचस्प तथ्य है कि यूरोप से सटे होने, यूरोपीय जीवन शैली और अपनी भाषा के लिए लेटिन लिपि अपनाने वाले तुर्की के लोग अंग्रेजी लगभग नहीं जानते, और न ही अंग्रेजी को खास पसंद करते। तुर्की आर्थिक रूप भी काफी मजबूत देश है। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से तुर्की के बाजार से भी अंग्रेजी गायब है। यहां तक कि दुकानदार, सिम बेचने वाले, बस कंडक्टर तक कोई भी दस तक अंग्रेजी गिनती भी नहीं जानते। हां, हम जैसे विदेशियों से बात करने के लिए कुछ दुकानदारों, विदेश विभाग के कर्मचारियों आदि ने थोड़ी-बहुत अंग्रेजी सीखी है। बढ़ती बेरोजगारी और बाजार के दबाव ने अंग्रेजी के प्रति युवाओं को आकर्षित करना शुरू किया है। यह दिलचस्प है कि तुर्की भाषा में भारत को 'हिंदिस्तान' कहते हैं। यानी जैसे भाषा के नाम के आधार पर जैसे कई देशों के नाम हैं, वैसे ही उन्होंने भारत का भी नामकरण किया। यहाँ के लोग भारत के बारे में कुछ न कुछ जानते हैं। महात्मा गांधी, आमिर खान और भारत के मसालों से काफी लोग परिचित हैं। यह भी रोचक है कि तुर्की में 'हिंदी' एक पक्षी व उसके मांस का भी नाम है जो सामान्यतः हर स्टोर पर मिल जाता है। इस पक्षी को भारत सहित दुनिया के कई हिस्सों में 'टर्की' कहते हैं।

चूंकि स्वयं तुर्की भाषा में अंग्रेजी के शब्द न के बराबर हैं इसलिए तुर्कीभाषी लोगों की भाषिक समझदारी यही है कि

भाषा में मिलावट नहीं होनी चाहिए। तुर्कीभाषी लोगों के मन में अपनी भाषा को लेकर कोई हीनताबोध भी नहीं है। यह सर्वविदित तथ्य है कि भारत में भारतीय भाषाओं से ज्यादा रुतबा अंग्रेजी को प्राप्त है। तुर्कीभाषियों को अपनी भाषा-संस्कृति पर स्वाभिमान होने की एक वजह संभवतः यह भी है कि तुर्की कभी भी अंग्रेजों या किसी अन्य का गुलाम नहीं रहा। यहाँ शिक्षा का माध्यम तुर्की ही है। निजी विद्यालयों का माध्यम भी तुर्कीभाषा है। अंग्रेजी स्कूल पूरे अंकारा में गिने-चुने हैं। जो हैं, उनमें भी मुख्यतः विदेशियों के बच्चे पढ़ते हैं। यहाँ के तमाम लेखक तुर्की भाषा में ही लिखते हैं। सबसे दिलचस्प है कि ग्लोबलाइजेशन के दौर में अपनी भाषा की स्वाभाविकता और मौलिकता को बचाये रखना। जिस तरह से तुर्की ने यह कर दिखाया है, वह अनुकरणीय है।

हमारे सबसे अच्छे विद्यार्थी की चिंता अभी भी वहीं के वहीं है। वह सबसे अच्छी किताबों से मेहनत कर हिंदी सीख रहा है। उसका द्वंद्व है कि वह अंग्रेजी मिश्रित व्यावहारिक हिंदी सीखे या अच्छी संस्कारित हिंदी! फिलहाल वह हिंदी के दोनों रूप सीखने की कोशिश कर रहा है लेकिन उसकी चिंता से हम हिंदीभाषियों को जरूर सोचना चाहिए कि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का जितनी तेजी से अंग्रेजीकरण हम कर रहे हैं, क्या वह उचित है?

***

अष्टांग योग का परिचय

अजय कुमार शास्त्री

महर्षि पतंजलि ने ई.पू. तीसरी शताब्दी में योगदर्शन नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें उन्होंने योग-सिद्धान्तों, साधना की विभिन्न पद्धतियों तथा चेतना की उत्कृष्ट अवस्था का क्रमबद्ध एवं प्रामाणिक रूप में संकलन किया। उन्होंने मानवीय चेतना के विकास हेतु अष्टांग योग का प्रतिपादन किया जो निम्न है :

1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7, ध्यान, 8. समाधि यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार को बहिरंग योग तथा धारणा, ध्यान, समाधि का अंतरंग योग कहते हैं।

(1) **यम :** यम वे सिद्धान्त या गुण हैं जिनका सामाजिक महत्व है। इनका पालन करने से मनुष्य का चित्त निर्मल एवं शुद्ध होता है। इनका विकास विद्यार्थी जीवन से ही करना चाहिए। यम के पांच प्रकार हैं जो निम्न हैं :

1. अहिंसा : अहिंसा का अर्थ है हिंसा का अभाव अर्थात् किसी भी प्राणी को मन, वाणी और कर्म से कष्ट न देना व किसी के प्रति ऐसा कार्य न करना जो हमें अपने लिए अप्रिय हो। एक योग सन्यासी के लिए विचारों की शुद्धि बहुत आवश्यक है, क्योंकि अहिंसा के अशुद्ध विचार शृंखला के रूप में आते चले जाते हैं। उदाहरण के लिए किसी का भी बुरा करने से पूर्व हमें मन में विचारों की शृंखला व क्रिया-प्रतिक्रिया से गुजरना पड़ता है। अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निद्धौ बैरत्यागः। यो. 2/35

2. सत्य : सत्य का पालन सभी के लिए आवश्यक है, सामाजिक दृष्टि से भी आपसी विश्वास सत्य पर ही आधारित है। इसलिए सत्य का पालन मन, वचन और कर्म से होना चाहिए– सत्य सोचें, सत्य बोलें और उसी के अनुरूप कार्य करें।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥ यो. 2/36

3. अस्तेय : अस्तेय का शब्दिक अर्थ है चोरी न करना, अर्थात् किसी ऐसी वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा न करना जो स्वयं के द्वारा उपार्जित न की गई हो। अस्तेय के पालन से सन्तुष्टि का भाव पैदा होता है। तथा सांसारिक वस्तुओं के प्रति लालसा नहीं रहती तथा अनासक्ति का भाव जागृत होता है, यह योग का उद्देश्य भी है।

4. ब्रह्मचर्य : मन, वचन और कर्म से मैथुन का त्याग ही ब्रह्मचर्य है। इसी के आधार पर संयम का विकास होता है। ब्रह्मचर्य के पालन से ही विद्यार्थी के शरीर का पूर्ण विकास होता है। असंयमित जीवन से समय और शक्ति नष्ट होती है तथा विद्यार्थी अपने लक्ष्य से भटक जाता है।

5. अपरिग्रह : अपरिग्रह का अर्थ है आवश्यकता से अधिक पदार्थों का संचय न करना। पदार्थों के अधिक संचय से उनके दुरुपयोग की संभावना बनी रहती है।

(2) **नियम :** नियम भी पांच हैं। इनका पालन करने से व्यक्ति का आत्मिक विकास होता है। योग साधना में इनका पालन आवश्यक है अर्थात् ये वे गुण हैं जो योगाभ्यासी को धीरे-धीरे योग के लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। ये निम्न हैं :

1. शौच : शौच से तात्पर्य पवित्रता से है। शारीरिक और मानसिक पवित्रता योगाभ्यासी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। योग में शारीरिक शुद्धि हेतु षटकर्म जैसे नेति, कुंजल, धोती, बस्ती से शरीर के मल तथा विजातीय तत्व बाहर निकाले जाते हैं। मानसिक शुद्धि के लिए प्रतिदिन शुभ-संकल्पों से पवित्र विचारों को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए।

2. सन्तोष : सन्तोष सभी के लिए आवश्यक है क्योंकि असन्तुष्ट व्यक्ति का मन बहुत चंचल रहता है। वह कभी भी स्वयं से तथा अपने वातावरण से सन्तुष्ट नहीं होता है। वृत्तियां बाह्य अधिक रहती हैं, जिससे ईर्ष्या, जलन आदि दुर्गुण पैदा हो जाते हैं।

"सन्तोषादनुत्तमम सुख लाभः।"

3. तप : योगाभ्यासी के लिए तप आवश्यक है। गर्मी, सर्दी, भूख-प्यास, मान-अपमान सहते हुए केवल अपने लक्ष्य प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। तप के अभ्यास से सहन (शक्ति) का विकास करना है व शारीरिक व मानसिक शक्ति का विकास करना है।

4. स्वाध्याय : स्वाध्याय का अर्थ है आत्मिक विकास के लिए अध्ययन, मनन, निदिध्यासन व अन्तःदर्शन द्वारा अपनी चेतना के विकास का प्रयत्न करना अपने विकारों, अशुद्ध विचारों को मनन और चिन्तन के द्वारा सतत दूर करते रहना

स्वाध्याय कहलाता है।

5. ईश्वर प्रणिधान : परमसत्ता के प्रति श्रद्धा रखकर समर्पित रहना ही ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा तथा समर्पण से अहंकार उत्पन्न नहीं होता है।

(3) **आसन :** महर्षि पतंजलि ने आसन शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है– "स्थिर सुखम् आसनम्"। अर्थात् आसन शब्द की उपयोगिता उसकी स्थिरता और सुखपूर्वक करने में है। आसन करते समय मन में स्थिरता व प्राणों पर एकाग्रता आवश्यक है तभी स्थिरता और सुख का भाव उत्पन्न होता है। आसन की उपयोगिता के बारे में महर्षि पतंजलिजी ने लिखा है– "ततोद्वन्द्वाभिघातः"। अर्थात् आसनों के अभ्यास से शारीरिक और मानसिक द्वन्द्वों को सहने की क्षमता का विकास होता है।

(4) **प्राणायाम :** महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम को परिभाषित करते हुए लिखा है : "तस्मिन सति श्वास-प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायाम!" अर्थात् आसनों के द्वारा शरीर को सक्षम बनाने के पश्चात् प्राणों के आयाम द्वारा श्वास की गति का नियमन, विस्तार और अनुशासित करना ही प्राणायाम है।

प्राणायाम के तीन अंग हैं–

(क) पूरक - नासिक छिद्रों द्वारा श्वास को ग्रहण करना पूरक कहलाता है।

(ख) रेचक - नासिका छिद्रों द्वारा श्वास को बाहर निकालना रेचक कहलाता है।

(ग) कुम्भक - श्वास को शरीर के भीतर या बाहर रोकने को कुम्भक कहते हैं।

(5) प्रत्याहार : महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए लिखा है : "स्वविषया सम्प्रयोगे चित्त स्वरूपानुसार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः

अर्थात् इन्द्रियों का अपने-अपने विषय (शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि) की ओर आकर्षण रुककर जब इन्द्रियां चित्त' के अनुसार ही समाहित हो जाती हैं, उसे ही प्रत्याहार कहते हैं। वस्तुतः प्रत्याहार का अर्थ आत्म नियंत्रण या संयम से है। योगाभ्यासी के लिए इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना आवश्यक है, अन्यथा इन्द्रियाँ मन को इधर-उधर भटकाती रहेंगी और मन अपने लक्ष्य पर केन्द्रित नहीं हो पायेगा।

(6) **धारणा :** महर्षि पतंजलि ने धारणा को परिभाषित करते हुए लिखा है : "देशबन्ध चित्तस्य धारणा"।

अर्थात् किसी स्थूल या सूक्ष्म तथा बाहर या भीतर के किसी ध्येय स्थान में मन को बांधना या स्थिर करना धारणा कहलाती है।

धारणा, ध्यान की प्रथम स्थिति है। धारणा और अन्तःदर्शन हमें स्वयं को देखने का अवसर देते हैं, अपने मन में उठने वाले विचारों को हम जागरूक होकर ही विश्लेषित कर पाते हैं। जागरूक रहने पर हम मन के साथ एक मशीन की तरह नहीं भागते हैं, बल्कि अनावश्यक विचारों की व्यर्थता के बारे में सोचने लगते हैं। धीरे-धीरे चेतना का विकास होता है।

(7) **ध्यान :** महर्षि पतंजलि ने ध्यान को परिभाषित करते हुए लिखा है– "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"। ध्यान, ध्यै चिन्तायाम धातु से बना है, जिसका अर्थ है एकरूपता अर्थात् चित्त (मन) की वह स्थिति जब वह लम्बे समय तक बिना किसी व्यवधान के स्थिर रहे। मन को एकाग्र करने अथवा विचार शून्य करने का अर्थ है कि मन जो हर समय एक मशीन की तरह सोचता रहता है, अथवा विचार, कल्पना में खोया रहता है, उस आदत से मुक्ति दिलाना। ध्यान के नियमित अभ्यास से मन पूर्णरूपेण एकाग्र होने लगता है, जिससे हमारी जागरूकता और चैतन्य शक्ति का विकास होता है।

(8) **समाधि :** समाधि योग की उत्कृष्ट अवस्था है। वस्तुतः यही योग का लक्ष्य है। महर्षि पतंजलि ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है : "तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि अर्थात् ध्यान की वह अवस्था जब केवल ध्येय की अनुभूति होने लगती है तथा सभी कुछ शून्य हो जाता है। समाधि में जिस वस्तु या आलम्बन का ध्यान किया जाता है, केवल उसी की अनुभूति होती है। यह स्थिति पूर्ण जागरूकता की स्थिति है, जिसमें कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता। वस्तुतः ध्यान की उच्चतम अवस्था ही समाधि है।

***

जेएनयू में दुर्गा पूजा का आरंभ और 'सेकुलरिज्म' का छद्म

व्यालोक

आज भी वह दिन, वह मंज़र अच्छी तरह याद है। वह 1998 की दोपहर थी। रमजान का मौसम था। इस लेखक को जेएनयू आए हुए एक साल होने वाले थे। देखा कि मेस में शाम को काफी कुछ खाने की व्यवस्था हो रही है, दरयाफ्त की, तो पता चला इफ्तार की तैयारी है। इफ्तार तो खैर समझ में आया, यह समझ नहीं आया कि इफ्तार के तुरंत बाद ही हॉस्टल की गैलरी से लेकर मेस के अंदर तक तमाम जगहों पर नमाज क्यों अता की जाती है? थोड़ा पीछे चलते हैं।

1997 में जेएनयू के जर्मन सेंटर (भाषा साहित्य एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र) में बी.ए. में एडमिशन होता है और जेएनयू में हॉस्टल (पेरियार में) सुविधा जनवरी 1998 से मिलना आरंभ होता है, क्योंकि उस वक्त हॉस्टल कम थे, भीड़ अधिक। अप्रैल-मई महीने में जेएनयू में इफ्तार पार्टी होती है। जेएनयू में इफ्तार पार्टी तो आज भी होती है और इसमें खाने की व्यवस्था सम्बंधित हॉस्टल का मेस करता है (मेस सेक्रेट्री/मेस मेनेजर/ मेस वार्डन-डीन ऑफ स्टूडेंट से लेकर सभी जेएनयू प्रशासनिक अधिकारियों को यह मालूम होता है)।

हॉस्टल में इफ्तार मेस का बिल आता है तो सभी को, जी हाँ "सभी छात्रों को जबरन वसूली के तहत"... (क्योंकि हॉस्टल के सभी स्टूडेंट्स को, भारत एक सेक्यूलर देश है कहकर अपनी जेब कटवाने में बहुत मज़ा आता है) बराबर-बराबर हिस्सा देना होता था। 1998 की इस घटना में मेस का बिल में 35-40 रुपये ज्यादा (उस समय 35-40 रुपया किसी भी छात्र के लिए एक बड़ी रकम होती थी) आता है, तो लेखक सहज भाव से यह प्रश्न उठाता है कि मेस बिल ज्यादा क्यों आया है? तो मेस मैनेजर व सेक्रेटरी बोलते है कि इफ्तार व ईद की वजह से मेस बिल ज्यादा आया है।

अब 1998 में नवरात्र शुरू होने से पहले लेखक अपने दोस्त रविभूषण से बात करता है, कि यार घर में होते तो माँ दुर्गा की पूजा करते, व्रत रखते क्या अब इसे हॉस्टल में करना संभव नहीं है? चूँकि रवि भूषण, अनिल सिंह, राजू व व्यालोक पाठक सभी इसी बातचीत में मग्न थे तो रवि भूषण ने एक आइडिया दिया कि घर तो नहीं जा सकते, तो क्यों न हम लोग अपने हॉस्टल रूम में ही दुर्गा-पूजा करें और नवरात्र का व्रत रखें? सभी लोग रवि भूषण की बात से सहमत हो जाते है, और दुर्गा-पूजा के लिए तैयारियों में जुट जाते हैं।

चूँकि दुर्गा-पूजा (नवरात्र) के समय उपवास किया जाएगा, तो जो लोग दुर्गा-पूजा का व्रत रखेगें उनकी खाने आदि की व्यवस्था कौन करेगा? इसके लिए वे लोग मेस मैनेजर से मिलते हैं, और बोलते हैं कि हम लोग नौ दिनों तक व्रत रखेंगे (नवरात्र का व्रत) इसलिए हमारे व्रत में खाने की व्यस्था मेस के माध्यम से की जाये, यह सुनते ही मेस मैनेजर के माथे पर बल पड़ जाता है और वह बोलता है कि इसकी व्यवस्था नहीं हो सकती है, ये हमारे लिए संभव नहीं।

मैं पूछता हूं कि हमारे हिन्दू त्योहारों को मनाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं, लेकिन कैंपस व मेस में इफ्तार/ईद मानाने की पूरी व्यवस्था है? जब इसका मेस बिल आता है वह तो सभी लोग भुगतान करते हैं ऐसा क्यों? इसी बीच अशोक शर्मा (आजकल ऑस्ट्रेलिया में प्रोफेसर) बीच में हनुमान जी तरह कूद जाते हैं, और वह हम लोगो के प्रवक्ता बन जाते हैं। सभी लोगों द्वारा तय किया जाता है कि चाहे जो भी हो जाए, इस बार हॉस्टल के अपने रूम में दुर्गा-पूजा और हवन अवश्य करेंगे।

मैं अपने रूम (पेरियार हॉस्टल का रूम नंबर 50) में दुर्गा-पूजा/नवरात्र का व्रत रखता हूं, और मुकेश कश्यप, रवि भूषण, अनिल सिंह और राजू भी ये व्रत रखते है... और यहीं से शुरूआत होती है जेएनयू में दुर्गा-पूजा मनाने के इस एक ऐतिहासिक और भव्य यात्रा की। हॉस्टल में रहने के कारण इन लोगो के पास पूजा में उपयोग आने वाली सामग्री का अभाव होता है, जैसे कि बहुत सारे बर्तनों की महती आवश्यकता होती है। हम लोग अपने ब्रेक-फ़ास्ट में उपयोग आने वाली प्लेट को मेस से लाते हैं, उसको मांजते है, रगड़ कर उसको साफ़ करते हैं। कहीं से गंगाजल मिल जाता है तो उस प्लेट को गंगाजल से पवित्र करते हैं और उस प्लेट का उपयोग पूजा के दौरान आरती में करते हैं।

प्रथम दिन से शुरू हुई आरती में पहले दिन चढावे के रूप में हम लोगों को 35-40 रुपये मिलते हैं और उसी धन से हम लोग व्रत के लिए फल-पूजा की अन्य सामग्री को क्रय करते हैं। शुरू में 9 लोग व्रत रखते हैं, और 9 से 15 लोग इनके व्रत या दुर्गा-पूजा का भाग बनते हैं। लेकिन यह बात कैंपस में आग की तरह फ़ैल जाती है क्योंकि वामियों-इस्लामियों के गढ़ जेएनयू के लिए यह एक दुर्लभ घटना है। खैर धीरे-धीरे हॉस्टल रूम की गैलरी में माँ दुर्गा के भक्त आने शुरू हो जाते हैं, और

भीड़ इतनी हो जाती है कि पंचमी के दिन आरती के लिए उस लिखित पेज का जीरोक्स करवाना पड़ता है, ताकि सभी भक्त आरती का उच्चारण ठीक से कर सकें। मेरे मुताबिक इसमें सबसे बड़ा योगदान जेएनयू की मातृशक्ति का होता है, अर्थात जेएनयू में अध्ययन करने वाली लड़कियाँ भी इस पूजा में आने लगती हैं, और पूजा के दौरान होने वाले विभिन्न कामों को वे खुद ही करने लगती हैं। भक्तों की आस्था, व्यालोक पाठक का रूम व पेरियार की वह गैलरी अब जेएनयू में चर्चा का विषय बन जाती है.. इसी बीच पेरियार हॉस्टल के चारो वार्डन डॉ कांति पी बाजपेयी व डॉ चौबे, डॉ पटनायक (सभी वामी वार्डन) व एक अन्य वार्डन इन लोगों को तंग/परेशान करना शुरू कर देते हैं। विभिन्न प्रकार से इन लोगो पर दबाव डाला जाता है कि उनके ऊपर दंडात्मक कार्यवाही होगी यदि वे ऐसा जारी रखेगें।

अब मेरा इरादा और भी दृढ़ हो जाता है। नवरात्रि के दौरान हम लोग धोती-कुर्ता धारण करना शुरू कर देते हैं, और वही धोती-कुर्ता धारण किये ये लोग गंगा ढाबा भी जाते हैं। क्लास में भी मेरी यही ड्रेस थी, ऊपर से तिलक लगाकर। इसी बीच यह होता है कि "कथित शांतिदूतों" द्वारा हॉस्टल वार्डन तक लिखित शिकायत होती है कि हॉस्टल के अन्दर दुर्गा-पूजा से उनके मज़हबी भावनाएं आहत हो रही हैं, और ठीक उसी समय सप्तमी के दिन से मैं मौन व्रत ले लेता हूं। (केवल वार्डन्स के लिए) अब सभी लोगों को अष्टमी के दिन वार्डन डॉ कांति बाजपेयी का बुलावा आता है। वार्डन के ऑफिस में इन लोगो की बहस होती है कि हम लोग हवन करेंगे। वार्डन बोलते हैं कि हॉस्टल के अन्दर हवन की अनुमति नहीं देगें, यह नियम के विरुद्ध है। परम्पराओं/रीति-रिवाजों को लेकर बहस होती रहती है तो व्रतधारी भक्त लोग ये बोलते हैं कि जब इफ्तार में एक महीने ठूंस-ठूंस खिलाया जाता है और उसका भार हम सभी लोगो पर पड़ता है, क्या वह हॉस्टल मैन्युअल में है? क्या हॉस्टल मैन्युअल में ऐसा कहीं लिखा है कि वे लोग जहाँ चाहे वहाँ पांच बार नमाज़ अदा कर सकते हैं? हॉस्टल की गैलरी में? स्कूल की गैलरी में? सेंट्रल लाइब्रेरी की लॉबी में? गैलरी में यहाँ तक बाथरूम की गैलरी में? क्या कहीं भी नमाज पढ़ी जा सकती है?

उसके बाद वार्डन कुछ नही तर्क नहीं दे पाते हैं। जेएनयू का School of Language Literature and Cultural Studies शुरू से वामपंथियों का गढ़ रहा है (स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज के बाद) और उसमे भी जर्मन भाषा का सेंटर। चूँकि मैं उसी भाषा का छात्र था, तो उसको क्लास में भी ताने सुनने पड़ते थे उसका कैरियर ख़राब करने की पूरी कोशिश की जाती है। दुर्गा-पूजा के दौरान मातृशक्ति का असीम सहयोग (उन लोगो की संख्या ज्यादा थी, और धीरे धीरे उन लोगो काफी काम खुद ही संभाल लिया था) ने भी मुझे बहुत बड़ा संबल प्रदान किया। इस प्रकार नवरात्रि की नवमी को धूमधाम से हवन हुआ (ठीक पेरियार गेट के सामने) और ये हवन सुबह 10 बजे से दिन में 3 बजे तक चला।

1999 में दुर्गा-पूजा/नवरात्री का हवन नर्मदा हॉस्टल के सामने हैं (नौ दिन तक पूजा मेरे रूम में ही होती है) क्योंकि नर्मदा हॉस्टल में स्कूल ऑफ लैंग्वेज के लड़के ज्यादा होते है, और अशोक चूँकि उधर के हॉस्टल प्रेसिडेंट रहे चुके होते हैं तो उनको उधर हवन के स्थान के लिए आसानी होती है। सबसे बड़ी बात कि उधर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के कार्यकर्ता भी ज्यादा तादाद में थे। सन 1999 तक दुर्गा-पूजा या नवरात्रि ये लोग हॉस्टल के एक अपने रूम में पूजा करते थे या हॉस्टल के गैलरी तक ही यह सीमित था... लेकिन आस्था के सैलाब को देखते हुए इसमें एक बड़ा टर्निंग पॉइंट आया सन 2000 में... जब रवि भूषण, मुकेश कश्यप जैसे भक्तों ने पेरियार व कावेरी हॉस्टल के मध्य स्थित बैडमिंटन कोर्ट में जेएनयू के इतिहास में पहली बार मूर्ति-स्थापना करके दुर्गा-पूजा की विधिवत शुरुआत की।

2001 में इस दुर्गा-पूजा को लेकर पुनः जेएनयू प्रशासन द्वारा अडंगा डाला जाता है, और उस समय डीन ऑफ स्टूडेंट वेलफेयर होते हैं एमएम कुरैशी। दुर्गा-पूजा के प्रथम दिन (प्रथमा) जब कलश स्थापना की गयी, तो प्रो कुरैशी (घोर सेक्युलर व शांतिदूत) को यह रास नहीं आया, और उन्होंने जेएनयू की सुरक्षा में लगे कर्मियों को आदेश दिया कि उस कलश को फेंक दिया जाये। जेएनयू के सिक्यूरिटी गार्ड ने कलश फेकने के लिए सिर्फ मना ही नहीं किया, बल्कि कलश को यह कहकर हाथ भी लगाने से मना कर दिया, कि साहेब मुझे आप चाहे तो नौकरी से निकाल दीजिये लेकिन मैं ये पाप नहीं करूँगा। सन 2000 से... यानी जबसे मूर्ति स्थापित करके जेएनयू में दुर्गा-पूजा शुरू हुई, वह आज अठारह वर्ष से लगातार जारी है।

अब जेएनयू में दुर्गा-पूजा बड़ी धूमधाम से होती है, बैनर लगाये जाते हैं, सभी होस्टलों में दुर्गा पूजा का पूरा कार्यक्रम लगाया जाता है, पेरियार के पास एक बड़ा द्वारा बनाया जाता है। पूजा के समय शाम से रात तक हजारों भक्त सम्मिलित होते हैं, लेकिन पंचमी के दिन से भीड़ बढ़ने लगती है, क्योंकि उसी दिन माँ दुर्गा की मूर्ति स्थापित की जाती है। पंचमी के दिन से दुर्गा-पूजा पंडाल प्रकाश से जगमगा जाता है बहुत सारे छोटे बच्चे एवं बच्चियां पंडाल के पास देर रात तक खेलते रहते हैं। कुल मिलाकर वह स्थान मंगलमय एवं भव्य हो जाता है।

लेकिन 1998 से शुरू हुई यह दुर्गा-पूजा जिसके लिए व्यालोक पाठक ने अपना कैरियर दांव पर लगा दिया (आखिरकार वह अपना एमए पूरा नहीं कर सका और आईआईएमसी चला गया)।

रवि भूषण सहित बाकी लोग अपनी मेहनत और मेधा से अच्छा काम कर रहे हैं।

***

अनुवाद अध्ययन का परिदृश्य : पुस्तक लोकार्पण एवं चर्चा

रिपोर्ट : प्रियंका श्रीवास्तव, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के बी.आर. अम्बेडकर केन्द्रीय पुस्तकालय सभाकक्ष में 24 अगस्त को प्रसिद्ध अनुवाद चिन्तक देवशंकर नवीन की पुस्तक 'अनुवाद अध्ययन का परिदृश्य' का लोकार्पण डॉ. रामशरण गौड़, प्रो. रवि भूषण, श्री मदन कश्यप, डॉ. जगदीश शर्मा, प्रो. देवेन्द्र चौबे, डॉ. गंगा सहाय मीणा के हाथों सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के कई अध्यापक एवं विभिन्न अनुशासनों के शोधार्थी उपस्थित थे। पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. रमेश चन्द्र गौड़ ने समागत अतिथियों का स्वागत किया। तत्पश्चात देवशंकर नवीन ने पुस्तक का संक्षिप्त परिचय देते हुए भारतीय अनुवाद

चिन्तन की दीर्घ परम्परा की भव्यता का उल्लेख किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि भारत में वैदिक युग से ही अनुवाद की असंख्य विधियाँ प्रयोग में लाई गई हैं, ज्ञान के विकास में हमारे प्राचीन आचार्यों ने अनुवाद सम्बन्धी कई उद्यम प्रस्तावित किए हैं। अपनी पारम्परिक थाती की महिमा जाने बिना यदि कोई भारतीय, या कि भारतीय बौद्धिक सम्पदा की जानकारी अर्जित किए बिना कोई अभारतीय, भारत की अनुवाद चिन्तन परम्परा पर कोई वैराग्य दिखाता है, तो इसे विचित्रता ही कहा जा सकता है। उन्होंने बताया कि हम भारतीयों को अपनी विरासत एवं धरोहर पर गर्व करना सीखना चाहिए। उन्होंने कहा कि हमारे पूर्वजों ने बेशक अनुवाद कार्य की विधियों पर उपदेशात्मक ग्रन्थ नहीं लिखे, किन्तु अनुवाद की प्रयुक्तियों द्वारा ही उन्होंने हमें बहुत कुछ सुझाया है। उन्होंने कहा कि विगत कुछ वर्षों में राजेन्द्र यादव, इन्द्रनाथ चौधरी, अशोक वाजपेयी, मैनेजर पाण्डेय, हरीश त्रिवेदी, विष्णु खरे, जी.एन. देवी, निर्मलकान्ति भट्टाचार्जी जैसे वरिष्ठ चिन्तकों के अनुवाद सम्बन्धी कई व्याख्यान हुए हैं। वे कहीं प्रकाशित हुए होते, तो अनुवाद सम्बन्धी कई भ्रान्तियाँ आप से आप छँट जातीं। अनुवाद की महत्ता को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा कि दुनिया की उजड़ी-बिखरी कई सभ्यताओं के पुनर्वासन में अनुवाद ने बड़ी भूमिका निभाई है।

वस्तुनिष्ठता के साथ पुस्तक की सराहना करते हुए अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, इग्नू के निदेशक डॉ. जगदीश शर्मा ने कहा कि अनुवाद परिदृश्य पर हम जब-तब पश्चिम के कार्य को देखते-सराहते रहते हैं, जबकि नवीन जी की यह पुस्तक अनुवाद के भारतीय परिदृश्य को रेखांकित करती है। इस कृति में पाठकों को भारतीय अनुवाद की दीर्घ परम्परा के साथ-साथ अनुवाद-कार्य के शिष्टाचारों की भी जानकारी मिलेगी। उन्होंने बताया कि भारत में अनुवाद के लिए अनुवचन, निर्वचन, पुनर्कथन, टीका, भाष्य जैसे कई तकनीकी शब्दों और विधियों का चलन रहा है। अनुवाद को केवल भाषिक गतिविधि या भाषिक क्रिया से परिभाषित करना सम्भव नहीं है। इसके लिए हमें डिजिटल गतिविधियों पर भी ध्यान देना होगा। वैश्विक जगत में अनुवाद, आज संवाद की भूमिका में है। उन्होंने कहा कि ज्ञान की इस सदी में अनुवाद की सहायता लिए बिना आगे बढ़ पाना असम्भव है। अपने वक्तव्य के अन्त में डॉ. जगदीश ने कहा कि विभिन्न भाषाओं को संकट से उबारने में अनुवाद की बड़ी भूमिका है और मौलिक रूप से हिंदी में लिखी इस पुस्तक ने अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में एक बड़ी कमी की भरपाई की है।

इस अवसर पर प्रो. गोबिन्द प्रसाद ने कहा कि वर्तमान समय में अनुवाद-कर्म का दायित्व गुरुतर हो गया है। ज्ञान की व्यापक दुनिया में इसका बड़ा योगदान है। किन्तु अनुवाद को सिद्धान्त से अधिक व्यवहार और सम्प्रेषणीयता के रूप में देखा जाना चाहिए। भाषा एवं संस्कृति की समझ के बिना, शब्द

की अभिव्यंजना जाने बिना अनुवाद नहीं किया जा सकता। यह पुस्तक हमारे अनुवाद शिक्षण के क्षेत्र की बड़ी कमी को पूरा करेगी।

हिंदी के सुविख्यात कवि, चिन्तक श्री मदन कश्यप ने पुस्तक के लेखक की प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए कहा कि देवशंकर नवीन की लेखन सम्बन्धी निष्ठा एवं लगन का मैं कायल हूँ। वे जो कुछ करते हैं, उसमें डूब जाते हैं। पिछले दिनों राजकमल चौधरी पर किया गया उनका कार्य आप सबको स्मरण होगा; वैसा एक काम कर लेना भी एक जीवन के लिए पर्याप्त होता है। उन्होंने रेखांकित किया कि अनुवाद अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाएँ तथा अनुवाद के विभिन्न पक्ष इस किताब में उपलब्ध हैं। इस किताब को पढ़ते हुए, अनुवाद से सम्बन्धित विभिन्न विचारों की खिड़कियाँ खुलती हैं। उन्होंने कहा कि पुस्तक की सफलता सिर्फ इस मायने में नहीं होती कि उसमें क्या लिखा है, बल्कि इस मायने में होती है कि वह आपके अन्दर विचार के कितने उद्वेलन पैदा करती है? इस दृष्टि से यह पुस्तक सफल नजर आती है। सांस्कृतिक संकटों से मुक्त होने तथा सभ्यता-संवर्द्धन में अनुवाद की महती भूमिका को भी उन्होंने रेखांकित किया।

इस अवसर पर प्रो. रविभूषण ने कहा कि अनुवाद की कोई स्थिर सैद्धान्तिकी नहीं हो सकती। अनुवाद को एक सामाजिक-सांस्कृतिक कर्म एवं रचनात्मक विमर्श के रूप में देखना चाहिए।

यूँ तो सभी वक्ताओं ने पुस्तक के तीन अध्यायों– 'सास्कृतिक संचरण और अनुवाद', 'अनुवाद और सत्ता विमर्श', तथा 'अनुवाद कौशल की व्यावसायिक उपादेयता' का विशेष तौर पर उल्लेख किया; किन्तु अपने समापन वक्तव्य में दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी के अध्यक्ष, डॉ. रामशरण गौड़ ने लेखक से 'सांस्कृतिक संचरण और अनुवाद' विषय पर एक अलग पुस्तक लिखने का प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा कि इस पुस्तक में अनुवाद चिन्तन की हर परम्परा को बारीकी से उजागर किया गया है। यह पुस्तक अनुवाद के शोधार्थियों के लिए अनुसन्धान की नई दिशाएँ खोलती है। अन्त में डॉ. रमेश चन्द्र गौड़ के सभी वक्ताओं एवं श्रोताओं के प्रति आभार प्रकट किया। सभी वक्ताओं के साथ-साथ श्रोताओं ने भी इस पुस्तक को अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में एक बड़े अभाव की पूर्ति के रूप में स्वीकार किया। सभी ने पुस्तक के लेखक देवशंकर नवीन को भरपूर बधाइयाँ दीं।

***

एक शाम कविता के नाम

रिपोर्ट : धीरेन्द्र कुमार, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

नई दिल्ली; कड़ियाँ और भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू के संयुक्त तत्त्वावधान में 24 जुलाई 2018 को युवा काव्य पाठ का आयोजन किया गया। गौरतलब है कि बहुत ही कम समय में कविता पाठ का आयोजन वरिष्ठ कवि एवं साहित्यकार डॉ. पदम सिंह 'पदम' के सानिध्य में सम्पन्न हुआ। आयोजित काव्यपाठ पाठ में युवा कवियों की कविताओं का रसास्वादन किया गया। इसमें गौरव भारती, अभिषेक सौरभ, राज कुमार, अभिषेक विक्रम, सुमित चौधरी, दीपा सिंह और पूनम कुमारी की कविताओं ने सभी को आह्लादित किया। डॉ. पदम सिंह 'पदम' सर ने अध्यक्षता करते हुए सभी कवियों को भविष्य के लिए शुभकामनाएं दी और अपनी कविताओं के माध्यम से मनुष्य के अन्दर खत्म होती इंसानियत और नैतिक मूल्यों को बचाने की ओर सभी का ध्यान आकर्षित किया। पूरे कार्यक्रम के दौरान भारतीय भाषा केंद्र जेएनयू के प्रोफ़ेसर गोबिन्द प्रसाद और डॉ. मलखान सिंह का सानिध्य बना रहा और दोनों ने युवा कवियों को संबोधित करते हुए आशीर्वचन के रूप में शुभकामनाएँ प्रदान की। कार्यक्रम का संचालन शौर्यजीत सिंह ने किया। इस तरह कविता पाठ काफी सफल रहा।

***

धर्म एक बहुत ही व्यापक विचार है जो समाज को बनाए रखने के सभी पहुलओं से संबंधित है।

- पं. दीनदयाल उपाध्याय

पुस्तक परिचर्चा

रिपोर्ट : सोनम सिंह, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय तथा प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली के तत्वावधान में 30 नवंबर 2018 को प्रो. ओमप्रकाश सिंह और प्रो. बी.आर. दीपक की पुस्तकों 'उपन्यास का वर्तमान', 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'चीनी सभ्यता के बुनियादी मूल्य' के लोकार्पण व परिचर्चा का आयोजन अंतरराष्ट्रीय अध्ययन संस्थान। के समिति कक्ष में किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रो. एम. जगदीश कुमार, कुलपति, जेएनयू, ने की। अपने अध्यक्षीय उदबोधन में उन्होंने पुस्तक के संपादकों को बधाई दी और कहा पुस्तक लिखने के लिए मजबूत इच्छाशक्ति की जरूरत होती है। पुस्तक लिखना आसान काम नहीं है। उन्होंने प्रो. ओमप्रकाश सिंह के बारे में कहा कि प्रो. सिंह ने हिंदी भाषा व साहित्य के विकास में अपनी पुस्तकों के द्वारा योगदान दिया। प्रो. दीपक के बारे में उन्होंने कहा कि वे चीनी साहित्य, भाषा के साथ ही हिंदी भाषा का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं यह बहुत सुखद है।

कुलसचिव डॉ. प्रमोद कुमार ने पुस्तकों के बारे में बहुत संक्षिप्त टिप्पणी की और संपादकों को बधाई दी।

पुस्तक के दोनों संपादकों ने अपने आत्मवक्तव्य में पुस्तक कि रचना प्रक्रिया पर बात की। प्रो. ओमप्रकाश सिंह ने अपनी बात रखने से पूर्व सबका स्वागत किया। उन्होंने काम करने के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुये अपने कार्यशैली से सभा को अवगत कराया। उन्होंने कहा कि 'उपन्यास का वर्तमान' पुस्तक एक सामूहिक प्रयास है। एक सेमिनार के तहत इस पुस्तक की रूपरेखा तय हुई थी। यह सेमिनार रचना केन्द्रित था। चौदह पंद्रह सालों के महत्त्वपूर्ण उपन्यासों को केंद्र में रखकर समीक्षा लिखी गई थी।

उन्होंने अपनी बात आगे रखते हुये कहा कि उपन्यास की आलोचना के प्रतिमान के निर्धारण मे अराजकता है। कथानक पर ही बात करके अधिकतर उपन्यास की आलोचना मान ली

जाती है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के संदर्भ में उन्होंने कहा कि इस पुस्तक और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' से हिंदी गद्य की शुरुआत मानी जाती है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' का पहला प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस बंबई से हुआ था और वह धार्मिक पुस्तक के रूप में पढ़ी जाती थी। कुछ समय पूर्व वार्ता की एक पुरानी पाण्डुलिपि मथुरा के छोटे मदन गोपाल मंदिर से मुझे प्राप्त हुई थी। यही पाण्डुलिपी 'चौरासी वैष्णवन कि वार्ता' के रूप में प्रकाशित की गई। ब्रज भाषा के प्रारम्भिक रूप में लिखी गई इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढ़ कर संपादित करना कठिन था। इस पुस्तक में चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अतिरिक्त और भी वार्ताओं का संकलन किया गया है।

प्रो. दीपक ने कहा– भारत चीन सम्बन्धों के बारे में मैंने शोध किए हैं और चीनी भाषा से कई अनुवाद के भी कार्य किए हैं। चीन के इतिहास को जानने के लिए पुरानी चीनी भाषा को जानना बहुत आवश्यक है। चीन में कन्फ्यूसियसवाद और विचारों का पुस्तक में संकलन किया गया। उन्होंने कहा की चीनी संस्कृति में भारतीय संस्कृति की भी अच्छी झलक मिलती है। भारत में जैसे परिवार को महत्त्व दिया जाता है और यह माना जाता है की परिवार संगठित रहेगा तो समुदाय संगठित होगा और समुदाय संगठित होने से देश संगठित रहेगा।

परिचर्चा के मुख्य वक्ता प्रो. गंगा प्रसाद विमल ने 'उपन्यास का वर्तमान' पुस्तक से अपनी बातचीत प्रारम्भ की। उन्होंने कहा यह पुस्तक हिंदी उपन्यास के ऐतिहासिक रूप को हमारे सामने रखती है तथा छात्रों, शिक्षकों व पाठकों के लिए यह अत्यंत उपयोगी है।

दूसरी पुस्तक के विषय में प्रो. विमल ने कहा– मध्यकाल के वैष्णवन की वार्ताओं के माध्यम से हम साहित्यिक व सामाजिक दोनों रूपरेखाओं को प्राप्त कर सकते हैं। इस लिहाज से 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस ऐतिहासिक सामग्री को यह कहकर खारिज नहीं किया जा सकता की इसमें धार्मिक संकीर्णताएँ हैं। यह लोक को जानने की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को उन्होंने हिंदी के प्राचीन गद्य की प्रामाणिक स्थिति का साक्ष्य माना और कहा तत्कालीन समय में ब्रज का इतना व्यापक प्रभाव था की कवियों को स्थापित होने के लिए ब्रज में लिखना आवश्यक था।

प्रो. अजय तिवारी ने अपने वक्तव्य में कहा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' आधुनिकता के दौर की पुस्तक है 'उपन्यास का वर्तमान' उत्तर आधुनिकता के दौर की पुस्तक है। पुस्तक की भूमिका से वक्तव्य उद्धृत करते हुये प्रो. तिवारी ने कहा अस्मिता विमर्श की धारणा वहाँ खंडित होती है जहाँ हम अस्मितावादी लेखन कर रहे लेखकों की सूची देखते हैं। उन्होंने आत्मकथा में सब्जेक्टीविटी को महत्त्वपूर्ण माना और उपन्यास निर्माण में कथानक को।

साहित्य के लिए परकाया प्रवेश आवश्यक है। दूसरे के दुःख का अनुभव कर पाना उपन्यास लेखन का आधार है। उन्होंने यह भी कहा कि संपादन के लिए सुचिन्तित दृष्टि आवश्यक है। 'उपन्यास का वर्तमान' पुस्तक की भूमिका से कई महत्त्वपूर्ण अंशों को लेकर उन्होंने संक्षेप में उसकी चर्चा की। दूसरी पुस्तक के विषय में उन्होंने कहा की संपादक ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के प्रति कठोरता बरती है। पंथ के प्रति भेदभाव का न होना आवश्यक है। इस पुस्तक की विशेषता है कि वह पाठक को एक पंथ विशेष के लोगों से जोड़ती है। इस तरह यह वार्ताएं एकात्मकता स्थापित करने में महत्त्व रखती है। ये वार्ताएं अतिवाद का विकल्प और समता का एक आदर्श निर्मित कर रही हैं।

प्रो. स्वर्ण सिंह ने बी.आर. दीपक की पुस्तक पर बातचीत की। उन्होंने कहा कि बी.आर. दीपक ने अपने पुस्तक में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है। सभी लेखक विभिन्न क्षेत्रों से अपनी पूरी क्षमता के साथ उपस्थित है। भारत व चीन की संस्कृति को समझने के दृष्टि से निश्चित ही यह एक महत्त्वपूर्ण संपादन का कार्य है।

अगले वक्ता के रूप में मदन कश्यप ने बी.आर. दीपक के पुस्तकों पर बातचीत की। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा, इन पुस्तकों से चीन की चिंतनधारा बनती है। चीन के चिंतन की निरंतरता का पता चलता है। चीन के इन पुस्तकों में चीन के मजबूत राष्ट्र निर्माण की बात की गई है। यूरोपीय ज्ञान की सत्ता से लड़ने के लिए एशियाई चिंतन धारा को विकसित करना आवश्यक है।

अंतिम वक्ता के रूप रवीन्द्र त्रिपाठी ने बहुत संक्षेप में अपनी बात प्रो. बी.आर. दीपक के पुस्तकों पर रखी। उन्होंने कहा, चीनी संस्कृति ने दूसरी संस्कृति को स्वीकार किया है। यह प्रो. दीपक के पुस्तकों से प्रमाणित होता है। रवीन्द्र जी ने प्रो. ओमप्रकाश सिंह के पुस्तकों पर कहा कि मैं शीघ्र ही इन पुस्तकों पर कुछ लिखूंगा।

कार्यक्रम के अंत में सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापन का कार्य प्रकाशन संस्थान के स्वत्वाधिकारी हरीशचंद्र शर्मा ने किया। कार्यक्रम का सफल संचालन भारतीय भाषा केंद्र के प्रो. सुधीर प्रताप सिंह ने किया।

***

अच्छी कविता से अच्छा कुछ नहीं

रिपोर्ट : नीरज कुमार मिश्र, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

नई दिल्ली; 'लिखावट' और भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू के संयुक्त तत्त्वावधान में 30 अक्टूबर 2018 को काव्यपाठ एवं परिचर्चा का आयोजन किया गया। "कविता मनुष्य को विवेक प्रदान करती है। कविता आचार-संहिता की तरह होती है। इसीलिए वह कवि और पाठक दोनों का ध्यान रखती है। जिस तरह जीवन को बचाये रखने के लिए ऑक्सीजन की जरूरत होती है, उसी तरह साहित्य को बचाये रखने के लिए कविता जरूरी है। कविता को आंदोलनकारी बनाने में विश्वास रखने वाले कवि थे रघुवीर सहाय। उनकी इसी विश्वास की विरासत को मिथिलेश श्रीवास्तव उठाये हुए हैं। कविता के एक्टिविस्ट हैं मिथिलेश श्रीवास्तव। उनका जिस तरह से कविता के प्रति समर्पण है, उसकी जितनी तारीफ़ की जाये कम है। लिखावट के द्वारा कविता के प्रचार-प्रसार में जो भी किया जा रहा है। उसकी वजह से मिथिलेश जी को याद किया जायेगा।" ये बात लिखावट और भारतीय भाषा केंद्र जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में आयोजित कविता-पाठ के कार्यक्रम में अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी जी बोल रहे थे। इस कार्यक्रम में वरिष्ठ कवि और आलोचक गोविंद प्रसाद और वरिष्ठ कवि और समीक्षक मिथिलेश श्रीवास्तव के कविता-पाठ को केंद्र में रखा गया था। इनकी कविताओं पर बोलते हुए त्रिपाठी जी आगे कहते हैं कि कवि मिथिलेश श्रीवास्तव और कवि गोविंद प्रसाद मेरे प्रिय कवि हैं। इन दोनों ने अपने समय के कवियों को खूब पढ़ा है। यह इनकी कविताओं से झलकता है। मिथिलेश श्रीवास्तव की कविता "घर में सफेदी" का जिक्र करते हुए त्रिपाठी जी कहते हैं कि इनकी कविता में सफाई के दौरान मिली छोटी छोटी चीजें स्मृति के साथ समय का पुल बनने का काम करती हैं।

कवि गोविंद प्रसाद पर बोलते हुए त्रिपाठी जी कहते हैं कि गोविंद प्रसाद अपनी कविताओं में मुग्ध होने वाले कवि नहीं हैं। इनकी कविताओं में भूख, भाषा और वस्तु की विविधता को देखा जा सकता है। इनकी कविताओं में आये मिथक इनकी कविताओं को बड़ा बनाते हैं। इनकी कविताओं में शोर नहीं, उत्तंग तरंगें नहीं बल्कि शांत और गहरी लहरों की तरह हैं। इस कार्यक्रम के प्रारम्भिक सत्र में दोनों कवियों का कविता-पाठ रखा गया। जिसमें सबसे पहले कवि मिथिलेश श्रीवास्तव ने अपनी कविताओं का पाठ किया। जिनमें प्रमुख हैं– गरीबों के लिए गरीबों की सरकार, हँसने का समय नहीं है, अच्छा नहीं लगता, बच्चे पूछ रहे हैं शांत पत्तों से लगातार, खास लोग अपने लोग, मैंने कई दिनों के बाद तुम्हें तुम्हारी तस्वीर में देखा, घर में सफेदी, शिविर एक दिन खाली हो गया, चीटियाँ और स्त्री से राजनीति। दूसरे कवि के रूप में गोविंद प्रसाद ने सुंदरता के बारे में, देह को चादर, जब मैं बोलता हूँ, कल्पना का रंग, फूल भी चुप पत्ते भी हैं चुपचाप, क्रांति के जेबों में, बेटे, झिलमिलाने लगे संध्या के तार, सुलगता बिंब, न रत्ती भर धूप न रत्ती भर छाया, वो बात, सूना विराट, टूटा-फूटा बन पड़ा और धर्म के नाम पर नामक कविताओं का पाठ किया। आमंत्रित कवियों के काव्य-संसार पर आलोचकीय वक्तव्य कवि और युवा आलोचक डॉ मनोज कुमार सिंह ने देते हुए कहा कि कवि गोविंद प्रसाद की कविताओं में ऊर्दू शब्दों का आना आतंकित नहीं करता। इनकी कविताओं में किसानों, उपेक्षित और गरीबों की कहानी को देखा जा सकता है। गोविंद की कविताओं में प्रकृति और प्रेम जिन रूपों में आया है वह समकालीन कविता में कम देखने को मिलता है। कवि मिथिलेश श्रीवास्तव पर बोलते हुए मनोज कुमार सिंह ने कहा कि यदि आपको आज़ादी के बाद की त्रासदी को देखना और समझना है तो इनकी कविता से होकर गुजरना होगा। कविता की लड़ाई केवल कवि की अकेले की नहीं है बल्कि यह लड़ाई समाज और आलोचक भी अपने अपने मोर्चे पर लड़ते हैं। कविता के प्रति मिथिलेश श्रीवास्तव बहुत ईमानदार हैं। यह ईमानदारी उनकी कविता के प्रति समर्पित भावना को दर्शाता है। कार्यक्रम का संचालन करते हुए डॉ नीरज कुमार मिश्र ने कहा कि कवि मिथिलेश श्रीवास्तव की कविताएँ सुनने और पढ़ने के बाद हमको बेचैन करती हैं। सच्चा और अच्छा कवि वही है जो पाठकों को सोचने को मजबूर करे। मिथिलेश जी उम्मीदों को जगाये रखने वाले कवि हैं। यहीं कवि गोविंद प्रसाद जी की कविताओं में आज के समाज के यथार्थ को आप बखूबी देख सकते हैं। कार्यक्रम में स्वागत वक्तव्य युवा कवि गौरव भारती और धन्यवाद ज्ञापन युवा कवियत्री पूजा राधा ने दिया। प्रो. देवेंद्र चौबे, राजीव वर्मा, प्रो. देवशंकर नवीन जैसे गणमान्य लोगों के साथ बहुत सारे शोधार्थी और छात्रों की गरिमामय उपस्थिति रही।

***

यौन शुचिता के मिथकों को ध्वस्त करती है 'देह ही देश'

रिपोर्ट : चंचल कुमार, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू के संयुक्त तत्त्वावधान में 19 नवम्बर 2018 को प्रो. गरिमा श्रीवास्तव की क्रोएशिया-प्रवास डायरी 'देह ही देश' पर एक परिचर्चा का आयोजन किया गया।

'देह ही देश' को एक समझना भूल होगा। इसमें दो सामानांतर डायरियां हैं, पहली वह जिसमें पूर्वी यूरोप की स्त्रियों के साथ हुई ट्रेजेडी दर्ज है और दूसरी में भारत है। यह वह भारत है जहाँ स्त्रियों के साथ लगातार मोलस्ट्रेशन होता है और उसे दर्ज करने की कोई कार्रवाई नहीं होती। सुप्रसिद्ध पत्रकार और सी.एस.डी.एस. के भारतीय भाषा कार्यक्रम के निदेशक अभय कुमार दुबे ने कहा कि हमारे देश में मोलस्ट्रेशन की विकृतियों की भीषण अभिव्यक्तियाँ निश्चय ही चौंकाने और डराने वाली हैं, जिनकी तरफ हमारा ध्यान 'देह ही देश' को पढ़ते हुए जाता है। प्रो. दुबे ने हिंसा और बलात्कार की घटनाओं पर वीडियो बनाकर सोशल मीडिया पर प्रसारित करने को भीषण सामाजिक विकृति बताया।

परिचर्चा में हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. पल्लव ने कहा कि यह पुस्तक संस्मरण, डायरी, रिपोर्ताज, यात्रा आख्यान और स्मृति के अंकन का मंजुल सहकार है। उन्होंने इसे यौन शुचिता के मिथकों को ध्वस्त करने वाली जरुरी किताब बताते हुए कहा कि शुद्धता की उन्मादी प्रवृत्ति के विरुद्ध 'देह ही देश' में नए जमाने की स्त्री की छटपटाहट है।

राजधानी कॉलेज के डॉ. राजीव रंजन गिरि ने कहा कि युद्ध इतिहास और कालखंड में तो समाप्त हो जाते हैं लेकिन भोगने वाले के चेतन और अवचेतन मन में ताउम्र बना रहता है। उन्होंने कहा कि एक प्रकार के कट्टर राष्ट्रवाद की अवधारणा बढती जा रही है जिसके फलस्वरूप युद्ध नीति के तौर पर बलात्कार की नीति को बढ़ावा मिल रहा है। अपने वक्तव्य में सुप्रसिद्ध पत्रकार भाषा सिंह ने कहा कि 'देह ही देश' सुलगते सच से साक्षात्कार कराती है और युद्ध तथा उन्माद के इस समय में अपने शीर्षक को सार्थक करती है।

परिचर्चा में भारतीय भाषा केंद्र के अध्यक्ष प्रो. गोबिंद प्रसाद, प्रो. रमण प्रसाद सिन्हा, प्रो. राजेश पासवान सहित बड़ी संख्या में विद्यार्थी और शोधार्थी मौजूद थे। आयोजन के अंत में श्रोताओं के सवालों के जवाब भी वक्ताओं द्वारा दिए गए। ज्ञातव्य है कि राजपाल एंड संज द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक 2018 की बेस्टसेलर साबित हुई है। कार्यक्रम का संचालन शोधार्थी बृजेश यादव ने किया। अंत में एम.ए. द्वितीय वर्ष के छात्र चंचल कुमार ने सभी का आभार व्यक्त किया।

***

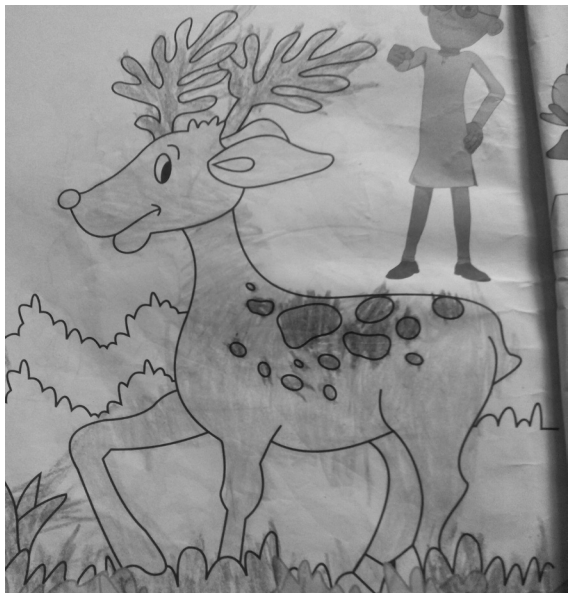

नए प्रकाशन

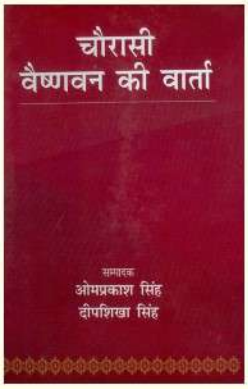

चौरासी वैष्णवन की वार्ता : सं. ओमप्रकाश सिंह/दीपशिखा सिंह यह पुस्तक वल्लभाचार्य पुष्टि संप्रदाय का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में वल्लभाचार्य के शिष्यों की कथाएँ संकलित हैं। यह पुस्तक न केवल भक्ति आन्दोलन की उत्तरकालीन परिणति और पुष्टि मार्ग के सामाजिक संबंध को समझने में सहायक है बल्कि भाषा विकास को भी समझने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

प्रकाशक : पुस्तक प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2018, मूल्य-500 रुपये।

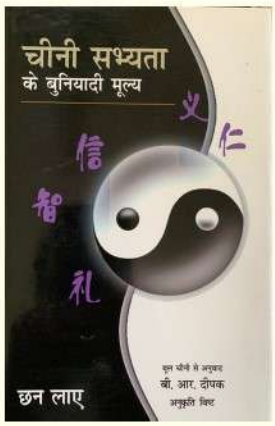

चीनी सभ्यता के बुनियादी मूल्य, अनुवादः बी आर दीपक। यह पुस्तक चीनी मूल्य-प्रणाली को बहुत गहराई से लेकिन बहुत सरल तरीके से पेश करती है। उसमें आकाश व धरती के प्रति चीनी लोगों की आस्था भी है, नैतिकता भी है, जो कंफ्यूशी प्राचीन ग्रंथों पर आधारित है।

मूल्य 500/- ISBN 978-81-7714-656-1

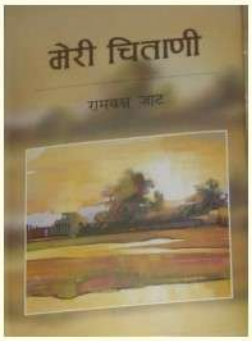

यह पुस्तक पुराने वार्ता साहित्य परम्परा की है, विशेष रूप से चौरासी वैष्णवों की वार्ता की। इसमें लेखक के पैतृक गाँव चिताणी को केंद्र में रखकर संस्मरण, आत्मकथा, चरित्रांकन आदि शैली में लेखन किया गया है।

प्रकाशक : अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य 350/-

समकालीन हिन्दी कविता का परिसरः शोधार्थी धीरेन्द्र कुमार द्वारा सम्पादित यह किताब हमारे समय के एक जरूरी पाठ के रूप में सामने आती है। पिछले चालीस सालों की हिंदी कविता को इस किताब में अलग-अलग नजरियों से जिस तरह से देखने की कोशिश की गई है उससे हिंदी कविता की कोई एक नहीं बल्कि एक साथ कई मुकम्मल तस्वीरें अपने व्यापक अर्थ सौन्दर्य के साथ उभरकर सामने आती हैं। पिछले चार दशक की समृद्ध उर्वर हिंदी काव्यधारा को आज के इस तीव्र गतिमान समय में इन स्वनामधन्य प्रख्यात कवियों, विद्वानों, आलोचकों और युवा अध्येताओं की दृष्टि से फिर से देखना, पढ़ना निसंदेह पाठकों के लिए दिलचस्प होगा।

प्रकाशक : ब्राउन पब्लिकेशन, जामिया नगर दिल्ली, मूल्यः 500

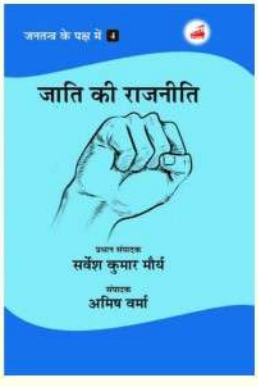

'जाति की राजनीति' पुस्तक आज के समय में जाति के सवाल को उसके विभिन्न आयामों के साथ समझने का प्रयास करती है। समाज, साहित्य, सिनेमा, शिक्षा जगत और जीवन के विभिन्न पक्षों में जाति और जातिवाद के दखल को पहचानने और भारतीय लोकतंत्र में इसकी भूमिका को समझने की कोशिश इस किताब में दिखाई पड़ती है। पुस्तक का संपादन किया है आलोचक अमिष वर्मा ने।

प्रकाशक : स्वराज प्रकाशन, दिल्ली मूल्यः 100/-

हमें अपने देश की आध्यात्मिक शिक्षा और सभी प्रकार की ऐतिहासिक शिक्षा अपने हाथ में लेनी होगी और उस शिक्षा में भारतीय शिक्षा की सनातन गति स्थिर रखनी होगी।

- स्वामी विवेकानन्द

परिसर वीथिका

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर जेएनयू के कुलपति प्रो. एम. जगदीश कुमार केन्द्रीय विद्यालय के बच्चों को पुरस्कार वितरित करते हुए।

हिंदी दिवस के अवसर पर जेएनयू की हिंदी पत्रिका 'जेएनयू परिसर' के नए अंक का विमोचन करते हुए मुख्य अतिथि एवं विद्वतजन।

जेएनयू में प्रदूषण मुक्त पहल के अंतर्गत साइकिल सेवा का उद्घाटन करते हुए विश्वविद्यालय के कुलपति।

जेएनयू परिसर की विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियां

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव द्वारा प्रकाशित।
मुद्रकः रैकमो प्रैस प्रा.लि., ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली-110020